स्वदेश दीपक का नाट्य साहित्य

[THE PLAYS OF SWADESH DEEPAK]

(एम.फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध)

शोध निर्देशक

डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा

शोधार्थी

प्रीति हुड्डा

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2014

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Language
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Langauge, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Date: 21/07/2014

DECLARATION

I declare that the research work done in this M.Phil Dissertation entitled **"SWADESH DEEPAK KA NATYA SAHITYA" (THE PLAYS OF SWADESH DEEPAK)** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

PREETI HOODA
(Research Scholar)

Dr. RAMAN PRASAD SINHA
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. RAMBUX JAT
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217; Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in

समर्पण

मम्मी–पापा को

जिनके जीवन संघर्ष ने

सदैव मुझे प्रेरित किया...

भूमिका

स्वदेश दीपक ने 8वें दशक से लिखना आरम्भ किया। उन्होंने अपने रचनाकर्म की शुरूआत एक कथाकार के रूप में की। लेकिन आज वे नाटककार के रूप में ज्यादा चर्चित है। उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें पाँच नाटक हैं।

अपनी कहानियों में बेहद अलग स्थिति का चित्रण करने वाले स्वदेश दीपक नाटकों में भी अलग ही विषय तथा स्थितियों को व्यंजित करते हैं। मनुष्य को 'मनुष्य' रूप में देखकर वे प्रत्येक कोण से उसकी जिन्दगी का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। उनके नाटकों का कथ्य आम आदमी की पीड़ा, व्यथा, विडंबना, कसमसाहट, समस्याएं आदि है, जो समाज के भीतर रहते हुए उसे झेलनी पड़ती है। उनके पात्र केवल बाहरी तौर पर नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी पीड़ित नज़र आते हैं। वे पात्रों की मानसिक स्थिति को रेखांकित करने का प्रयास करते हैं। उनके सभी पात्र संघर्ष की प्रेरणा से अनुप्रेरित हैं। उनका अंत चाहे जो हो वे संघर्ष करके लड़ने वाले पात्र हैं।

शिल्प की दृष्टि से भी स्वदेश दीपक अलग मुकाम पर खड़े नज़र आते हैं। घटनाओं का संयोजन, दृश्य-विधान, संवाद आदि उनके नाटकों की स्थितियों को अलग तरह से प्रस्तुत करने की कवायद करती हैं। उनके नाटकों में रंगमंचीय संभावनाएं अपार हैं, जिनकों अलग-अलग तरीके से प्रस्तुत कर निर्देशकों ने उनको और व्यापक बनाया है।

आम आदमी की जिन्दगी से जुड़े पक्षों को दीपक इस तरह से उद्घाटित करते हैं कि सहज ही सामान्य जन अपने को उनके साथ एकाकार पाता है। यह एकाकार केवल रंगमंच तक सीमित न होकर, बाद में भी आपको झकझोरता है, सोचने पर मजबूर करता है कि ऐसा क्यों हुआ?

इतने बेजोड़ कथ्य तथा अलग शिल्प पक्ष होने के बावजूद नाटककार के रूप में उनकी चर्चा कम की जाती है। केवल 'कोर्ट मार्शल' को छोड़कर उनके अन्य नाटक चर्चा का विषय नहीं बनते। ना ही किसी बड़े आलोचक ने उनके नाटकों का महत्त्व रेखांकित किया है, ना ही किसी पत्र-पत्रिका में उनके संपूर्ण नाटकों का विशद् अध्ययन या लेख प्रकाशित हुआ है।

यह शोध-प्रबंध स्वदेश दीपक के संपूर्ण नाटकों पर विचार-विमर्श करते हुए, संपूर्णता में उनके नाटकों का विश्लेषण करने का प्रयत्न करता है।

प्रथम अध्याय 'समकालीन नाट्य परिदृश्य' 7वें दशक से शुरू हुए रंगान्दोलन का विश्लेषण है जिसमें समकालीन नाटककारों और रंगकर्मियों के योगदान पर विचार-विमर्श करते हुए स्वदेश दीपक का इस परंपरा में स्थान निर्धारित करने की कोशिश की गई है।

द्वितीय अध्याय 'स्वदेश दीपक के नाटक : साहित्यिकता' में साहित्यिक दृष्टि से दीपक के नाटकों पर विचार-विमर्श किया गया है। नाटक एक द्वि-आयामी कला है जिसमें जितना महत्व रंगमंच का है उतना ही साहित्यिकता का। एक साहित्यिक कृति के रूप में उनके नाटकों का परीक्षण किया गया है।

तृतीय अध्याय 'रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ' उनके नाटकों की अब तक हुई विभिन्न प्रस्तुतियों पर केन्द्रित है। इन प्रस्तुतियों के माध्यम से सामने आई निर्देशकों की व्याख्या तथा अनेक अर्थों पर विचार-विमर्श किया गया है। रंगमंच नाटक को मूर्त रूप देने के साथ-साथ 'अर्थ' के संदर्भ में कई संभावनाओं को विस्तार देता है तथा नाटक के दायरे को बढ़ाता है। इसी व्यापक दायरे को इस अध्याय में देखने की कोशिश की गई है।

आभार

यह लघु शोध-प्रबंध मेरे शोध निर्देशक डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा के कुशल मार्गदर्शन में पूरा किया गया है। विषय चयन से लेकर शोध-कार्य पूर्ण होने तक उन्होंने जिस सहजता तथा स्नेह से सहयोग किया उसके लिए 'आभार' शब्द भी कम है।

एम.फिल. होने से लेकर जीवन में प्रत्येक स्तर पर मम्मी-पापा का सहयोग व आशीर्वाद सदैव साथ रहा। उनका आशीर्वाद अमूल्य है, आभार प्रकट करके मैं उनकी 'महती भूमिका' को कम नहीं करना चाहती।

दादी माँ, ताऊजी, स्वर्गीय बुआ एवं सभी परिवारजनों को धन्यवाद जिन्होंने हर कदम हौसला अफजाई की। भाई अमर, आकाश, अभिषेक, पूजा (बहन), स्वर्गीय अनु और प्यारी गुड़िया पलक ने सौहार्द तथा स्नेह से सदैव मानसिक संबल प्रदान किया।

आद्यंत तक शोध-प्रबंध के पूरे होने में, अपने स्नेह, हंसी मजाक, चुहलबाजी और कभी-कभी डांटकर भी, प्रत्येक स्तर पर कमरे का माहौल खुशनुमा बनाकर और अनुवाद में सहयोग करके, रितुपर्णा (रूममेट) ने बहुत योगदान किया, उसे आभार देना गुस्ताखी होगी...।

दोस्त रामानुज यादव (सैमी) ने हर पल साथ दिया। सामग्री जुटाने में मेरे साथ दिल्ली की गलियों, कूचों में घूमा। 40 साल पुराने पते तक खोजकर कई बार डांटा भी, पर फिर भी उसको आभार नहीं...।

मेरे अभिन्न मित्र अशोक कुमार यादव (दंते) ने हर वक्त परेशानियों में साथ देकर मानसिक संबल बनाए रखा तथा शोध प्रबंध की 'आलोचना' का खतरा भी उठाया। वैसे भी सैमी की 'कविताई' और अशोक की 'आलोचना' से ही यह 'नाटक' का शोध-प्रबंध पूरा हुआ है।

अभिषेक शुक्ल को अपने से ज्यादा मेरे शोध-प्रबंध की चिंता रहती थी। हर वक्त उसने विश्वास जताते हुए प्रेरणा दी।

सभी सीनियर्स को धन्यवाद विशेषकर संकट मोचन रामानंद भैया को, नीलम भाभी, अजय भैया, राजीव भैया, श्याम भैया को जिन्होंने पारिवारिक स्नेह बनाए रखा।

सामग्री जुटाने में विशेषरूप से नटरंग प्रतिष्ठान तथा ललित कला अकादमी व जे.एन.यू. लाइब्रेरी के स्टाफ का बहुत धन्यवाद।

निर्देशक अरविंद गौड़, सुकांत दीपक, अनूप बराल को धन्यवाद, जिन्होंने नेपाली नाटक की स्क्रिप्ट भेजी। विशेष रूप से नीलांजन गांगुली को धन्यवाद जिन्होंने तमाम व्यस्तताओं के चलते पश्चिम बंगाल से नाटक की सी.डी. तथा अन्य सामग्री सहर्ष भेजी।

टींटू मैम का विशेष आभार जिन्होंने हिंदी भाषी न होते हुए भी 'मलयालम' का अनुवाद हिंदी में समझाने में मदद की।

बड़े भाई और मेरे आदर्श लक्ष्मण सिंह को शुक्रिया जिन्होंने सदैव मार्गदर्शन किया तथा प्रत्येक परेशानी में साथ दिया।

निधि दी (भाभी) विनीत भैया को सेहत का ध्यान रखने के लिए शुक्रिया।

कक्षा के सभी सहपाठियों और मित्रों को खुशनुमा माहौल बनाए रखने के लिए धन्यवाद। देव (गब्बर), ओमशाह, ओम मीणा, मंजू, धीरेन्द्र (धीरू), जगदीश (J.D.), रेणु, सोनम जैनेन्द्र, शिव, सुशील, रक्षा, लीना, वर्षा, नीलम दी, सभी को शुक्रिया कहा तो शायद बवाल हो जाए...। जूनियर्स में देवीलाल, सुबोध, जितेन्द्र को शुक्रिया से ज्यादा स्नेह...। मेरी Ex-roommate गुड्डू को स्नेह, जो साथ न रहकर भी हमेशा साथ थी।

मेरी कॉलेज की अध्यापिका रंजीत कौर मैम को विशेष धन्यवाद जिन्होंने सदैव पीठ थपथपाकर हौसला बढ़ाया।

अंत में उन सभी व्यक्तियों को दिल से धन्यवाद जिनकी बदोलत ये शोध-कार्य पूरा हो पाया।

प्रीति हुड्डा
259, कोयना होस्टल
जे.एन.यू.

अध्याय विभाजन

विषय-सूची	पृष्ठ संख्या
भूमिका	i-ii
आभार	iii-iv
प्रथम अध्याय : समकालीन नाट्य परिदृश्य और स्वदेश दीपक	1-32
द्वितीय अध्याय : स्वदेश दीपक के नाटक : साहित्यिकता	33-63
तृतीय अध्याय : स्वदेश दीपक के नाटकों की रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ	64-97
उपसंहार	98-99
सहायक ग्रंथ-सूची	100-104

अध्याय-1

समकालीन नाट्य परिदृश्य और स्वदेश दीपक

अध्याय-1
समकालीन नाट्य परिदृश्य और स्वदेश दीपक

'कोर्ट मार्शल' नाटक से चर्चित हुए साहित्यकार स्वदेश दीपक जितने नाटककार हैं उतने ही कथाकार भी। उनके कई कहानी-संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 'अश्वारोही' (1973), 'मातम' (1978), 'तमाशा' (1979), 'प्रतिनिधि कहानियाँ' (1985), 'बाल भगवान' (1986), 'किसी अप्रिय घटना का समाचार नहीं' (1990), 'मसखरे कभी रोते नहीं' (1997), 'निर्वाचित कहानियाँ' (2003) उनके प्रमुख कहानी संग्रह तथा 'नम्बर 57 स्क्वाड्रन' (1979) तथा 'मायापोत' (1985) दो उपन्यास हैं। अंतिम प्रकाशित रचना आत्मकथात्मक संस्मरण 'मैने मांडू नहीं देखा : खंडित जीवन का कोलाज' (2003) है जो उनकी बीमारी तथा अवसाद से जुड़े जीवन की घटनाओं और संस्मरणों का कोलाज है।

अपनी कहानियों के संबंध में भी "नाट्यात्मक कहानियों के लिए पहचाने गए स्वदेश दीपक हिन्दी में कहानी के रंगमंच की अवधारणा को विकसित करने वाले लेखकों में से हैं। सुगठित चरित्राकंन, चुस्त संवाद और गत्यात्मक घटनाएँ उनकी रचनाओं की खास विशेषताएँ हैं।"[1]

उनकी पहली नाट्यकृति 'बाल भगवान' (1989) उन्हीं के द्वारा उनकी कहानी का किया गया नाट्य रूपांतरण है। यह रूपांतरण हालांकि बहुत अधिक नाटकीय न बनकर, कहानी के ही ज्यादा करीब लगता है लेकिन एक शुरूआत के रूप में सशक्त रचना है। इसी से उनकी नाट्य कृतियों का आरंभ होता है। अभी तक उनके पांच नाटक प्रकाशित हो चुके हैं- 'नाटक बाल भगवान' (1989), 'कोर्ट मार्शल' (1991), 'सबसे उदास कविता' (1998), 'जलता हुआ रथ' (1998), 'काल कोठरी' (1999), अंतिम तीन नाटकों का लिखा जाना लंबी बीमारी के बाद भी साहित्य के प्रति, नाट्य विधा के प्रति जिजीविषा का द्योतक हैं।

कथ्य की दृष्टि से दीपक के सारे नाटक समकालीन समाज की विद्रूपताओं, विडंबनाओं, राजनीतिक अफरा-तफरी, समाज के निचले वर्ग की समस्याओं, सुविधाजीवी, भौतिकता, मशीनीकरण और छद्म प्रगतिशीलता के बीच प्रभावित होती मानवीय संवेदना, क्षोभ, आक्रोश को व्यक्त करने वाले हैं। दीपक शोषित जन की व्यथा गाथा न गाकर उसके पीछे के कारणों को लक्षित कर परत दर परत

समाज की शोषणकारी व्यवस्था की बखिया उधेड़ते हुए सच्चाई को सामने लाने की कोशिश करते नज़र आते हैं। कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से दीपक के नाटक हमें प्रभावित करते हैं। देश के प्रत्येक कोने में कश्मीर से लेकर कोच्चि तक, जयपुर से लेकर डिब्रूगढ़ तक, 'कोर्ट मार्शल' के हजारों प्रदर्शन लेखक की संवेदना की शाश्वतता एवं सूक्ष्म अनुभूति के गवाह हैं।

प्रत्येक लेखक अपने समाज की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं साहित्यिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है तथा उन्हें प्रभावित भी करता है। स्वदेश दीपक भी इससे अछूते नहीं हैं। उनके नाटकों, विशेषत: 'कोर्ट मार्शल' ने जहाँ दशवें दशक में लेखन तथा रंगकर्म दोनों को प्रभावित किया, वहीं इनसे खुद प्रभावित भी हुए। इसलिए उनके नाट्यकर्म को समझने एवं विश्लेषित करने के लिए समकालीन नाट्य परिदृश्य पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

जब हम समकालीन नाट्य परिदृश्य की बात करते है तो विवादास्पद शब्द 'समकालीन' जरूर ध्यान आकर्षित करता है। आधुनिकता और अपने समय के सवालों से जूझता शब्द 'समकालीन' जो कालगत तथा प्रवृतिगत दोनों को समेटे हुए है, नाटक के क्षेत्र में भी उतना ही विवादास्पद है, जितना साहित्य की अन्य विधाओं में। अपने समय के अन्य रचनाकारों को अगर समकालीन माने तो कालगत अर्थ में ही समकालीनता रह जाएगी। बहरहाल, 'समकालीन' शब्द की परिभाषा पर न जाते हुए इस शोध प्रबंध में इस शब्द से मेरा तात्पर्य 1970-80 के दशक तथा उसके बाद के रंगकर्म तथा नाट्य लेखन से है। यह वहीं समय है जब नाट्यकर्म एक नई दिशा की ओर अग्रसर होता हुआ विभिन्न प्रयोगों के सहारे साहित्य में अपनी पहचान बनाने की ओर उन्मुख हुआ। "1960-70 का समय वस्तुत: रंगकर्म में क्रांति लहर की तरह था। हिन्दी की श्रेष्ठतम नाट्य रचनाएँ इसी दौर में लिखी गई, आगामी रंगकर्म की पीठिका भी इसी समय तैयार हुई।"[2]

हिन्दी नाट्य जगत में इस क्रांति का आगाज करने वाले मोहन राकेश तथा धर्मवीर भारती जैसे लेखक हैं। इन दोनों नाटककारों के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे अधूरे', 'अंधा युग' (धर्मवीर भारती) हिन्दी नाटक के विकास में मील का पत्थर साबित हुए। मानवीय संवेदना, युद्ध के बाद की विभीषिका मानवीय मूल्यों के हनन, क्षोभ, कुंठा, अवसाद को व्यक्त करता काव्यनाटक 'अंधायुग' अपने कथ्य तथा संवेदना के साथ प्रस्तुतीकरण के कारण ज्यादा प्रसिद्ध हुआ। वहीं दूसरी ओर

नाट्य भाषा की तलाश, रंगकर्म के प्रति निष्ठा, कसावट युक्त नाट्य विधान तथा निरंतर रंगमंच व नाटक के रिश्ते को पुष्ट करते मोहन राकेश के नाटक आगामी रंगकर्म तथा नाट्य लेखन को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। हिन्दी साहित्य जगत में नाट्य विधा को शिखर पद पर आसीन करने वाले मोहन राकेश ही हैं।

रंगमंच के स्तर पर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (1959) तथा अन्य उभरती रंगमंडलियों ने नाट्य साहित्य को रंगमंच पर प्रदर्शित करते हुए परिपूर्ण किया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक इब्राहिम अल्काजी ने अपने भव्य एवं विराट प्रदर्शनों द्वारा रंगमंच तथा रंगकार्य को उच्च शिखर पर पहुँचाते हुए उसकी महत्ता को स्थापित किया। "1962 में उन्होंने 'पहला मौलिक नाटक (आषाढ़ का एक दिन) निर्देशित कर मौलिक नाट्य लेखन के प्रति विश्वसनीयता पैदा की परंतु उनका उद्देश्य हिन्दी रंगकर्म को उदार, ग्रहणशील और व्यापक बनाना था।"[3] 1962-1977 तक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक के रूप में तथा बाद में स्वतंत्र रूप में रंगकर्म करते हुए अल्काजी ने अनेक विशिष्ट प्रस्तुतियाँ देकर रंगकार्य को अभिजात्य समाज में प्रतिष्ठित किया, वरना अभी तक रंगकर्म को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था।

अल्काजी ने सदैव ऐसे नाटक किए जिनका प्रस्तुतिकरण भव्य एवं विराट दृश्यबंध की मांग रखता है। शेक्सपीयर, मौलियर, जान आस्वर्न के साथ-साथ भारतीय नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन', 'अंधा युग', 'तुगलक', 'सूर्यमुख' आदि सभी नाटक इसी कोटि के हैं। पाश्चात्य संस्कारों और इसी दृष्टिबोध से प्रभावित उनके रंगकर्म की आलोचना भी की गई क्योंकि भारतीय नाटकों की प्रस्तुति में भी उनकी शैली वहीं रही। लेकिन इसके "बावजूद वे ज्यादा भारतीय लगते हैं क्योंकि जितना प्रभाव भारतीय रंगमंच और विशेषत: हिन्दी रंगमंच पर उनकी रचना प्रक्रिया ने डाला है, उतना संभवत: अकेले किसी और निर्देशक ने नहीं।"[4] लेकिन यह भी सच है कि इतना बड़ा निर्देशक होते हुए भी एक ही परिपाटी में वे सदैव बंधे रहे, किसी नए, मौलिक, उत्तेजक आलेख को उन्होंने कभी मंचित नहीं किया। उनकी भव्यता तथा विराट दृश्यबंध में नाटकों का मूल उद्देश्य तथा अभिनेयता छोटी नज़र आने लगती हैं। परंतु फिर भी अपनी प्रशिक्षण प्रक्रिया, रंग प्रक्रिया तथा आगामी रंगकर्म को दिशा एवं उत्साह देने के लिए उन्हें सदैव याद रखा जाएगा।

नाटक के क्षेत्र में मोहन राकेश तथा रंगकर्म पर अल्काजी की 'क्लासिकी' 1970 के दशक में छाई रही। लेकिन 1970 के दशक के बाद बदलती परिस्थितियों ने नाटक तथा रंगमंच को प्रभावित

किया, जिससे नए नाटक एवं रंगकर्म की नई शैली की जरूरत महसूस की जाने लगी। 1962 में भारत चीन युद्ध, भारत-पाक युद्ध, बांग्लादेश का उदय, राजनीतिक उथल पुथल, केंद्रीय सत्ता के बिखराव, 1967 के भयंकर सूखे, राजनीति में इंदिरा गांधी के उदय, शरणार्थी समस्या, महंगाई, गरीबी आदि ने साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ नाटक को भी प्रभावित किया। हालांकि किसी राजनीतिक या सामाजिक घटना की तत्काल अभिव्यक्ति साहित्य में नहीं होती, न ही होनी चाहिए, क्योंकि साहित्य अखबारी लेखन या प्रतिक्रिया नहीं है, लेकिन संवेदना के स्तर पर ये घटनाएँ लेखक को प्रभावित अवश्य करती है। तत्कालीन नाट्य साहित्य भी इनसे प्रभावित हुआ।

साहित्य अब विशिष्ट जन से हटकर आम जन की ओर उन्मुख होने लगा था। सर्वप्रथम, भाषा के स्तर पर काव्यात्मक और भावात्मक भाषा के लिए प्रसिद्ध मोहन राकेश ने भी 'आधे-अधूरे' को आम बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत किया। मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष संबंधों को उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत करने वाला यह नाटक-कथ्य तथा शिल्प दोनों स्तरों पर प्रभावित करता है।

रंगमंच के क्षेत्र में अनूदित रचनाओं ने भी हिंदी रंगकर्म तथा नाट्य लेखन को पर्याप्त प्रभावित किया। 'तुगलक', 'सखाराम बाइन्डर', 'इंद्रजित', 'सुनो जनमेजय', 'खामोश अदालत जारी है', 'सूर्यास्त', 'घासीराम कोतवाल' आदि ने हिंदी नाटक को एक नई शैली का अहसास कराया।

रंगमंडलियों में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के अतिरिक्त नटराज (लखनऊ 1956), भारती (1958), 'कानपुर की दर्पण', दिल्ली की 'श्री आर्टस क्लब लिटिल थियेटर ग्रुप', 'अभियान', 'नया थियेटर', 'यांत्रिक', 'दिशांतर', 'हिंदुस्तानी थियेटर', 'इंद्रप्रस्थ थियेटर' (1966), 'थियेटर यूनिट', 'इप्टा', 'अनामिका' आदि ने रंगकार्य को आगे बढ़ाने तथा नाट्य लेखन को प्रोत्साहित करने का काम किया।

अनूदित नाट्य रचनाओं, नई रंगमंडलियों के उदय तथा तत्कालीन परिस्थितियों के कारण हिंदी नाट्यकर्म अब धीरे-धीरे अभिजात्यता से बाहर आकर आम लोगों की भाषा में सामान्य जन की विवशताओं एवं समस्याओं को अभिव्यक्ति देने लगा।

सत्यदेव दुबे द्वारा 'अंधा युग' के प्रदर्शन (1962) जो कथ्य की दृष्टि से मानवीय मूल्यों के हनन, युद्ध की विभीषिका को प्रकट करने वाला नाटक है, ने काव्यात्मक नाटकों तथा प्रदर्शन के बहुआयामी

स्तरों का मार्ग प्रशस्त किया। रंगमंच के स्तर पर "1970 के आसपास यह महसूस किया जाने लगा कि रंगमंच रंगशाला नहीं और नाटक को रंगमंच नहीं रंगशाला की दीवारों से आजाद कराया जाना है।"[5]

युगीन राजनीति, सामाजिक प्रहार, मूल्यों और अस्तित्व के संकट को अभिव्यक्त करने के लिए मिथक आदि के प्रयोगों के साथ-साथ आम जन जीवन के मुहावरों में पेश करने के लिए नई-नई शैलियों तथा नई विषयवस्तु को आधार मिला। शैलियों, विषयवस्तु तथा रंगमंच सभी क्षेत्रों में विविधता एवं विस्तार का प्रसार हुआ। अल्काजी की विराट एवं भव्य प्रस्तुतियों के स्थान पर सादगीपूर्ण मंच की आवश्यकता अनुभव होने लगी। मोहन राकेश की काव्यात्मक भाषा की जगह आम बोलचाल की भाषा में नाट्यकर्म अग्रसर हुआ। 'शुतुर्मुर्ग', 'बकरी', 'रसंगधर्व' आदि इसके सशक्त उदाहरण है।

विषयवस्तु तथा शैलियों में इस विविधता तथा विस्तार का प्रसार करने वाले नाटककारों में सबसे पहला नाम लक्ष्मीनारायण लाल का आता है। लाल मोहन राकेश के समकालीन थे। नाट्य जगत में संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक प्रयोग उन्होंने ही किए। उनके लगभग 25 मौलिक नाटक हैं, जिनमें प्रत्येक में वे विषय-वस्तु तथा शिल्प दोनों में प्रयोग करते नज़र आते हैं। 'मादा कैक्टस', 'दर्पण', 'रातरानी', 'सूर्यमुख', 'कर्फ्यू', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'व्यक्तिगत', 'सबरंग मोहभंग', 'सगुन पंछी', 'एक सत्य हरिश्चंद्र', 'यक्षप्रश्न' आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। रंगमंच से प्रत्यक्ष जुड़े रहने के कारण रंगमचीय उपादान, कथ्य की दृष्टि से रोचकता एवं नाटकीय कल्पना का समावेश उनके सभी नाटकों में है। मध्यवर्ग की समस्याओं से लेकर आम जन की समस्याओं को भी उन्होंने अभिव्यक्ति दी है। लेकिन "इन विचारों और चरित्रों को वे किसी गहरे अथवा सार्थक जीवन अनुभव के रूप में नहीं रख पाते। उनके चरित्रों में कोई आंतरिक अथवा बाहरी संगति अक्सर नहीं होती जिससे वे समग्र जीवित व्यक्ति नहीं, अलग-अलग रंगबिरंगी कीप के टुकड़ों से बनाए गए सजावटी, पर निर्जीव खिलौने लगते हैं।"[6]

शिल्प की दृष्टि से भी उनकी शैली ओढ़ी हुई सी लगती है, जो नाटक में समाविष्ट न होकर अलग-अलग सी दिखती जान पड़ती है। ऐसा लगता है जैसे इस शिल्प व शैली की योजना पहले की गई है तथा कथ्य को बाद में इसमें भरा गया है। इन कमियों के बावजूद, अनुभूति की गहनता-सघनता में कमी के बावजूद, प्रयोगशील प्रवृत्तियों को प्रशस्त करने के लिए उनका योगदान अतुलनीय है। अपना पूरा जीवन उन्होंने नाटक तथा रंगकर्म को समर्पित कर दिया। 'व्यक्तिगत', 'सगुन पंछी', 'सूर्यमुख',

'कर्फ्यू' आदि उनके श्रेष्ठ नाटक है जिनमें उनकी प्रतिभा निखर कर सामने आयी तथा जो हिन्दी नाटक परिदृश्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मोहन राकेश के बाद उन्हीं की नाट्य परंपरा तथा नाट्य युक्तियों को आगे बढ़ाने वाले लेखकों में सुरेन्द्र वर्मा सबसे ज्यादा प्रभावित करते हैं। सुरेन्द्र वर्मा की शैली, भाषा, कथ्य के स्वरूप आदि पर मोहन राकेश का अत्याधिक प्रभाव है लेकिन अनुभूति, संवेदना, कथानक तथा प्रयोगों के स्तर पर सुरेन्द्र वर्मा मोहन राकेश से कही आगे जाते प्रतीत होते हैं तथा अपना नाम हिंदी साहित्य में अनुकरणीय लेखक की तरह नहीं बल्कि मौलिक शैलियों की उद्‌भावना करने वाले लेखक के रूप में दर्ज कराते हैं। 'द्रौपदी', 'सेतुबंध', 'नींद क्यों रात भर नहीं आती', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', 'छोटे सैयद बड़े सैयद', 'कैद-ए-हयात', 'एक दूनी एक' आदि उनके मौलिक नाटक है। स्त्री पुरुष संबंध, कलाकार जीवन की समस्याएँ, शासक-कलाकार संबंध, श्लील-अश्लील साहित्य का मुद्दा, स्त्री जीवन की उपेक्षा तथा अनुभूतियों को उन्होंने अपने नाटकों में अभिव्यक्ति दी है। वे केवल 'काम संबंधों की कमनीयता'[7] के नाटककार न होकर 'अंतर्विश्लेषण और सूक्ष्म सौंदर्य बोध'[8] के लेखक हैं। "नए नए संदर्भों, यथार्थ जगत, नवीन शिल्प, रंगमंचीय व्याकरण, सार्थक नाट्य भाषा के कारण सुरेन्द्र वर्मा के नाटक हिंदी के नए नाटक को समृद्ध करते हैं और रंगमंच की संभावनाओं में नाट्यभाषा की व्यंजना शक्ति और लय-सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं।"[9]

सुरेन्द्र वर्मा ने स्त्री-पुरुष संबंधों को मिथकों एवं पौराणिक संदर्भों से व्याख्यायित करने की कोशिश की है। उनके यहाँ इतिहास, मिथक उसी रूप में है जिस रूप में राकेश के यहाँ थे। लेकिन मल्लिका जैसी भावुक नारी की जगह उन्होंने शीलवती जैसी प्रखर व्यक्तित्व की नारी को नाटक का विषय बनाया। स्त्री पुरुष के रिश्ते को प्रत्येक संभव कोण से पूरी ईमानदारी एवं सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने की पूरी कोशिश सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में दिखती है।

समकालीन समाज में स्त्री की बढ़ती स्वतंत्रता, पाश्चात्य स्त्री विमर्श का प्रभाव, राजनीति में इंदिरा गांधी का प्रथम महिला प्रधानमंत्री के रूप में उदय, आर्थिक क्षेत्र में स्त्री की बढ़ती गतिविधियों ने स्त्री समाज को, उसके विचार, अभिव्यक्ति को प्रभावित किया। संयुक्त परिवार के टूटने तथा गरीबी महंगाई और समाज में विघटित मूल्यों ने, पुरुषों द्वारा स्त्री की इस स्वतंत्रता को अपने वर्चस्व पर संकट रूप में देखने, आदि से समाज में खासकर मध्यवर्ग में स्त्री-पुरुष संबंधों में बदलाव आया।

सांसारिक भारतीय मूल्यों को अब नाकाफी समझा जाने लगा तथा रूढ़ मान्यताओं का स्त्री समाज ने खंडन करके अपने स्वतंत्र अस्तित्व को सामने लाने का प्रयास किया। स्त्री-पुरुष के इन संबंधों को 'आधे-अधूरे' में राकेश ने आम बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत किया तो सुरेन्द्र वर्मा ने मिथक एवं पौराणिक आधारों में। तत्कालीन नाट्य विमर्श पर इसका गहरा असर हुआ तथा स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित अनेक नाटक सामने आए। 'सगुन पंछी', 'कर्फ्यू', 'देवयानी का कहना है', 'तिलचट्टा', 'मरजीवा एक ओर अजनबी', 'अरे मायावी सरोवर', 'कोमल गांधार', 'माधवी', 'कृति-विकृति', 'देहांतर', 'अंतरंग', 'नींद आने तक', 'एक दूनी एक', 'इला' आदि ऐसे ही नाटक है।

स्त्री पुरुष संबंधों को आम बोलचाल की भाषा में 'आधे-अधूरे', 'द्रौपदी' के बाद 'देवयानी का कहना है' में रमेश बक्षी ने प्रस्तुत किया। इस नाटक में देवयानी शीलवती से आगे बढ़कर विवाह संबंधों को नकार कर केवल शारीरिक संबंधों को रिश्तों का आधार मानते हुए नए-नए प्रयोग करती है। माँ-बाप के असफल विवाह को देखकर, अनेक प्रेमियों द्वारा धोखा खाने एवं उसके विचारों को न समझने के बाद साधन बैनर्जी के साथ आज के मुहावरों में live-in relationship में रहने की कोशिश करती है। लेकिन एक छत के नीचे रहने का उसका कारण केवल सुरक्षित एवं सुलभ शारीरिक संबंधों तक सीमित है। विस्फोटक भाषा में प्रस्तुत यह नाटक कोई गहरी मानवीय संवेदना की प्रतीति नहीं कराता तथा बेवजह की बयानबाजी बनकर रह जाता है।

लक्ष्मी नारायण लाल का 'कर्फ्यू' भी कर्फ्यू के दिनों में एक ही घर में रहने पर मजबूर संजय-कविता तथा अन्य एक जोड़े के माध्यम से बौद्धिक-शारीरिक और मानसिक वर्जनाओं से घिरे-बंधे मानव जीवन की सूक्ष्म त्रासद स्थितियों को उजागर करने का प्रयास करता है। यहाँ भी स्त्री पुरुष संबंध केवल शारीरिक संबंधों तक सीमित न होकर मुक्ति, सत्य, आत्मसाक्षात्कार की बेवजह बयानबाजी में उलझ कर रह जाते हैं।

मुद्राराक्षस ने स्त्री-पुरुष संबंधों को एब्सर्ड शैली में 'संतोला', 'मरजीवा', 'तिलचट्टा' आदि नाटकों में व्याख्यायित करने की कोशिश की है। 'तिलचट्टा' में देव और केशी के माध्यम से पति-पत्नी के संबंधों में आए ठंडेपन को, 'संतोला' में इस ठंडेपन को किसी तीसरे व्यक्ति की कल्पना करके दूर करने की कोशिश को, 'मरजीवा' में मध्यवर्गीय स्त्रियों की काम चेतना को दर्शाया गया है। मुद्राराक्षस

स्त्री-पुरुष के काम संबंधों में 'ठंडेपन' को तो लक्षित करते हैं लेकिन उसके पीछे के कारणों पर मौन रह जाते हैं। मानवीय मूल्यों की समाप्ति के युग में, पारिवारिक ढाँचे की टूटन घुटन तथा अवसाद उनके नाटकों में नहीं है। यहाँ भी पुरुष-स्त्री संबंध शारीरिक संबंधों तक सीमित हो जाते हैं।

इन से आगे बढ़कर 'एक ओर अजनबी' में मृदुला गर्ग दो अलग-अलग जोड़ों का सामने रखकर प्रेम और विवाह की जटिल समस्या को देखने का प्रयत्न करती है। आगे बढ़ने की दौड़ में निरंतर बिखरते मानवीय और नैतिक मूल्य को इस नाटक में बखूबी दर्शाया गया है। शारीरिक संबंध कहीं भी अतिरंजित और आरोपित नहीं लगते।

स्त्री पुरुष जीवन की समस्याओं को, स्त्री के स्वरूप को सामने लाने वाले लेखकों में 'शंकर शेष' का नाम प्रमुख है। 'कोमल गांधार', 'अरे मायावी सरोवर' आदि नाटकों में मिथकों और पौराणिक कथाओं के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंध को व्याख्यायित किया गया है। 'कोमल गांधार' में राजनैतिक आकांक्षाओं और सत्ता समीकरण के लिए कुर्बान होती गांधारी की भावनाएँ इच्छाएँ तथा मौन रूप से उसका विरोध प्रमुख है। हालांकि यह विरोध उसके जीवन में कुंठा, क्षोभ व वैराग्य का कारण बनता है लेकिन महाभारत कालीन राजनीति में स्त्री की व्यथा व विवशता को प्रकट करने वाला यह नाटक बेजोड़ है। 'अरे मायावी सरोवर' में राजा-रानी को संस्कृतनिष्ठ भाषा में न बुलवाकर आज की बोलचाल की भाषा में संवाद प्रस्तुत करके शंकर शेष नई शैली का सूत्रपात करते हैं। यहाँ राजा (पुरुष) को स्त्री जीवन की सार्थकता तो समझ आती है, वह उसका महत्त्व, मातृत्व भी स्वीकारता है लेकिन पूरी स्त्री जीवन की महत्ता यहाँ दही बड़े बनाने, पापड़ बनाने, एक आदर्श पत्नी व माँ बनने में सिमट जाती है। एक मनुष्य के रूप में स्त्री यहाँ अपनी सार्थकता न महसूस करके, माँ व बहिन बनने में ही सार्थक जीवन मानती है। शंकर शेष का यह दृष्टिकोण स्त्री जीवन के अधूरेपन का बयान ही करता है तथा उनकी अधूरी मानसिकता का द्योतक है।

भीष्म साहनी का 'माधवी' नाटक स्त्री की विवशता को, पुरुष के वर्चस्व को ऐतिहासिक कथा के आवरण में प्रस्तुत करता है। पिता, पति, गुरु सभी द्वारा माधवी का मानसिक-शारीरिक शोषण होता है और बाद में उसका पति ही उसे अपनाने से इंकार कर देता है। पुरुष की महत्वाकांक्षा का शिकार हुई माधवी अंत में अपनी पहचान ढूँढ़ने निकल जाती है। कथ्य की दृष्टि से पर्याप्त रोचक तथा स्त्री जीवन की समस्याओं को द्योतित करने के बावजूद शिल्प की दृष्टि से एक बेजान रचना है।

1980 के दशक में स्त्री-पुरुष संबंधों को केवल शारीरिक संबंधों तक सीमित मानकर रचनाएँ हुई। लेकिन बाद में इस दृष्टिकोण में बदलाव आया तथा 'बहू', 'अक्स पहेली' (त्रिपुरारी शर्मा) आदि रचनाओं में स्त्री समाज की व्यापक समस्याओं को स्वर मिला। 'देवयानी का कहना है', 'संतोला', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' आदि नाटक स्त्री-पुरुष संबंधों को उच्च मध्यवर्गीय चश्में से देखने वाले नाटक ज्यादा लगते है, व्यवहारिक कम। नौवें, दशवें दशक में महिला लेखिकाओं की उपस्थिति तथा अन्य नाटककारों ने इस मानसिकता को तोड़ा तथा व्यापक पैमाने पर स्त्री समस्याओं को देखा। स्वदेश दीपक के प्रत्येक नाटक में स्त्री छोटे से पात्र रूप में ही सही, लेकिन अपनी सशक्त पहचान दर्ज कराती नज़र आती है। वह शोषण सहन न करके उसका जवाब देने वाली स्त्री है। कृति-विकृति (नागबोडस), अंतरंग (रामेश्वर प्रेम), ठहरा हुआ पानी (शांति मल्होत्रा) आदि ऐसे ही नाटक है।

1970 के दशक में स्त्री-पुरुष संबंधों पर व्यापक पैमाने पर नाटककारों ने कलम चलाई लेकिन बहुत सारे लेखक ऐसे भी थे, जिन्होंने तत्कालीन, सामाजिक, राजनैतिक विद्रूपताओं को भापंकर, आम जनता के शोषण, शोषणकारी व्यवस्था को अपने लेखन का आधार बनाया। तत्कालीन बिखरती राजनीतिक परिस्थितियों, नौकरी के नाम पर रिश्वत, जमाखोरी, सिफारिश घोटालों, केंद्रीय सत्ता के बिखराव, 1975 के आपातकाल, हड़ताल, नक्सलबाड़ी आंदोलन (1969), छात्र आंदोलन आदि घटनाओं ने लेखकों को प्रभावित किया।

'शुतुर्मुर्ग', 'बकरी', 'आला अफसर', 'प्रजा ही रहने दो', 'रसगंधर्व', 'कथा एक कंस की', 'अजातघर', 'पोस्टर', 'काल कोठरी', 'जलता हुआ रथ', 'ताजमहल का टेण्डर', 'अंधों का हाथी', 'सिंहासन खाली है', 'त्रिशंकु' आदि नाटक राजनीति पर, व्यवस्था पर व्यंग्य करने वाले नाटक है।

'शुतुर्मुर्ग' (ज्ञानदेव अग्निहोत्री) में शासक की शुतुर्मुर्गीय प्रवृत्ति को दिखाया गया है जिसमें आगामी खतरे को भांपकर उसका सामना करने की बजाय जमीन में सिर गाड लेता है या पलायन करके आँखे मूंद लेता है। सत्ता के सम्मोहन और उसके चालाक लेकिन खोखले चरित्र का पर्दाफाश इस नाटक में है। 'बकरी' (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) एक बेलाग, तेज और हमलावर रचना है। 'अंधेर नगरी' की शैली में आम आदमी की भाषा में आम आदमी की समस्याओं का चित्रण है। गांधी के मूल्यों का, धर्म

का शोषण के लिए इस्तेमाल करने वाले नेताओं पर करारी टिप्पणी है 'बकरी'। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए गांधीवादी आदर्शों का इस्तेमाल करने वाले नेता जनता का शोषण करते हैं। अंत में नौजवान युवक द्वारा सशस्त्र विरोध दिखलाकर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने एक समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश की है। 'रसगंधर्व' (मणि मधुकर) में लोक शैली में राज व्यवस्था, न्यायव्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए उसे समाज की, आम जनता की इच्छाओं और प्रतिभा को कुंद करने वाली व्यवस्था के रूप में दिखलाया गया है।

'योर्स फेथफुली' में एबसर्ड शैली में मुद्राराक्षस ने सरकारी तंत्र में पिसते मानवीय मूल्यों, पारिवारिक और निजी संबंध, भावनाओं, आकांक्षाओं तथा यांत्रिक जीवन जीते कर्मचारियों को बेलाग एवं सशक्त रूप में बिना किसी लाग-लपेट के प्रस्तुत किया है।

राजनीति, व्यवस्था, अफसरशाही, लाल फीताशाही, सत्ता के लिए संघर्ष को 'सिंहासन खाली है' में सुशील कुमार सिंह ने प्रस्तुत किया है। सत्ता के लिए खींचतान, चुनावी वादों का खोखलापन, अयोग्य शासक, आदि को इस नाटक में व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

स्वदेश दीपक 'काल कोठरी', 'जलता हुआ रथ', 'सबसे उदास कविता' नाटकों में राजनीति के इसी दोहरे चरित्र को प्रस्तुत करते हैं, जो एक ओर दंगे करवाती है तथा दूसरी ओर सहानुभूति के नाम पर वोट मांगती है।

1980 के दशक के बाद इंदिरा गाँधी की हत्या, राजीव गाँधी की हत्या, घोटाले, भ्रष्टाचार, दंगे-फसाद की राजनीति, धर्म के नाम पर राजनीति से विक्षुब्ध होकर अनेक नाटककारों ने इस व्यवस्था का विरोध अपने नाटकों में किया। इसी समय नुक्कड़ नाटक जो सीधे जनता को संबोधित होते हैं, उन्हीं के बीच होते हैं, बड़े पैमाने पर खेले गए।

1970 के बाद विषय वस्तु की दृष्टि से नाटककारों में विविधता आई। छोटे-छोटे विषयों पर नाटक लिखे गए। कलाकार की संवेदनशीलता को कुंद करते शासन के चरित्र को, शासक-कलाकार संबंध का जो कथानक मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' में प्रस्तुत किया, उसी संबंध को अलग-अलग कोणों से, अलग-अलग शैलियों में आगामी नाटककारों ने प्रस्तुत किया। 'आठवां सर्ग',

'कैद-ए-हयात' (सुरेन्द्र वर्मा), 'हानूश' (भीष्म साहनी), 'आइंस्टाइन', 'काल कोठरी' (स्वदेश दीपक) ऐसे ही नाटक हैं। 1990 के दशक तक कलाकार राज्य के संबंध जहाँ संवेदनशीलता के कुंद होने तक सीमित थे वही 1990 के बाद आजीविका के लिए संकट के रूप में सामने आए। आज के यांत्रिक, मशीनी युग में कलाकार की संवेदनशीलता का कोई मूल्य नहीं है। उसे राजनीतिक व्यवस्था के ठेकेदार अपनी राह का रोड़ा ही समझते है। 1970-80 के दशक से शुरू हुआ यह राजनीतिक व्यंग्य के नाटकों का सिलसिला, कलाकार की संवेदनशीलता को कुंद करने वाले नाटकों का सिलसिला आज भी जारी है। हालाँकि आज के नाटकों में इसका स्वरूप बदल गया है।

विषय वस्तु की दृष्टि से विविधता तथा नए प्रयोगों का आगाज करने वाले 1970 के दशक में तथा उसके बाद के वर्षों में अनेक नाटक सामने आए। कोढ़ जैसी बीमारी पर- 'माटी की गाड़ी' (त्रिपुरारी शर्मा), भोपाल गैस त्रासदी पर (बाँझ घाटी), कंस जैसे अत्याचारी राजा के अत्याचारी होने के मनोवैज्ञानिक कारणों को लक्षित करने वाले (कथा एक कंस की), शिक्षा जगत में फैले भ्रष्टाचार व महत्वाकांक्षा को समझने वाले (एक ओर द्रोणाचार्य), कबीर के जीवन पर केन्द्रित (कबीरा खड़ा बाजार में, कहत कबीर सुनो भाई साधो), भारत पाक विभाजन की त्रासदी पर आधारित (जिन लाहौर नहीं देख्या ओ जम्या नई), गांधी के विचारों और आदर्शों की हत्या पर आधारित (हत्या एक आकार की (ललित सहगल)), पारिवारिक संबंधों के विघटन पर आधारित (तीसरा हाथी, देवयानी का कहना है), आदिवासी समस्या पर (पोस्टर), युवा वर्ग की बेचैनी और आक्रोश तथा पीढ़ीगत अंतर को लक्षित करते नाटक (त्रिशंकु, पांचवा सवार), आदि।

नाट्य लेखन में इस उत्साह तथा विषय विविधता का महत्त्वपूर्ण कारण जहाँ तत्कालीन परिस्थितियाँ थी वहीं दूसरी ओर 1970 के दशक के बाद निरंतर प्रयोगशील रंगकर्म भी था। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से प्रशिक्षित अनेक अभिनेता, निर्देशक आदि तथा अन्य रंग मंडलियों ने रंगमंच को विस्तरित किया। 1970 के दशक के बाद प्रयोगों के सिलसिले में निर्देशकों का नाम नाटककारों से पहले लिया जाता है क्योंकि इस रंगादोलन की शुरूआत करने तथा इसे पुष्पित पल्लवित करने का श्रेय रंगनिर्देशकों को भी जाता है। इब्राहिम अल्काजी, व.ब. कारंत, सत्यदेव दुबे, बंसी कौल, हबीब तनवीर, ऊषा गांगुली, रतन थियम, शांता गांधी आदि निर्देशकों ने भारतीय तथा पारम्परिक नाट्य रूपों को

पाश्चात्य नाट्यशैलियों आदि को मिलाकर या उनसे अनेक तत्त्व ग्रहण करके अपनी-अपनी निजी रंगशैली विकसित की। एक ही नाटक को विभिन्न शैलियों में प्रस्तुत करके, नाटक के अर्थ की विभिन्न संभावनाओं को उजागर करते हुए, रंगमंच पर निर्देशक के व्यक्तित्व को विशिष्ट पहचान 8वें दशक में मिलनी शुरू हुई।

इन संभावनाओं को रेखांकित करने में सत्यदेव दुबे का बहुत बड़ा योगदान है। अंधा युग (1962) का प्रदर्शन करके सत्यदेव दुबे ने इस काव्यनाटक की नाटकीयता तथा रंगमंचीय संभावनाओं का द्वार खोला। थियेटर यूनिट के लिए सत्यदेव दुबे ने अन्य नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' (1964), 'सुनो जनमेजय' (1966), 'शुतुर्मुर्ग' (1968), 'आधे अधूरे' (1969) एवं 'इंद्रजीत' (1970) आदि खेलकर अपनी विविधतापूर्ण रंगदृष्टि का परिचय कराया। अल्काजी के विपरीत भारतीय रंगमंच में सममुच में मात्र भारतीय रचनाओं के माध्यम से अपना रास्ता बनाने वाले निर्देशकों में सत्यदेव दुबे सर्वोपरि है। उन्होंने सीधे-सीधे समसामयिक नाटकों के माध्यम से अपने रंगकर्म को पुख्ता किया।

एक-दो विदेशी नाटकों को छोड़कर उनके द्वारा मंचित सारे नाटक भारतीय भाषाओं के हैं। लक्ष्मीनारायण लाल का 'मादा कैक्टस', 'आषाढ़ का एक दिन' (मोहन राकेश), 'हयवदन' (गिरीश कर्नाड), 'खामोश अदालत जारी है' (विजय तेंदुलकर) 'एवं इंद्रजित', 'पगला घोड़ा' (बादल सरकार), 'चाणक्य विष्णुगुप्त' (पुरुषोत्तम देश पांडे) आदि उनके द्वारा मंचित प्रमुख नाटक हैं जो उनकी वैविध्यपूर्ण रंगदृष्टि का परिचायक है। अल्काजी की प्रस्तुतियों में जहाँ तकनीकी पक्ष, भव्यता, दृश्य बोध प्रमुख रहा वहीं सत्यदेव दूबे की प्रस्तुतियाँ तकनीकी दृष्टि से थोड़ी कमजोर लेकिन अभिनय पक्ष में असरकार साबित हुई। अभिनेता पर जितना गहराई से काम सत्यदेव दूबे ने किया उतना किसी अन्य निर्देशक ने नहीं। लेकिन दृश्यबंध की दृष्टि से सत्यदेव दूबे शुद्ध परंपरावादी निर्देशक हैं। उन्होंने सारे नाटक बंद प्रेक्षागृह में ही किए और इसीलिए उनके नाटकों में अभिनेय पक्ष ज्यादा असरदार तरीके से उभर कर सामने आया। प्रयोग के स्तर पर उन्होंने कुछ नाटकों में फिल्मी गानों का भी प्रयोग किया जैसे 'एवं इंद्रजीत' में 'तुम बिन जाऊं कहाँ' और 'इशा अल्लाह' में नेपथ्य से आती हुई मशहूर फिल्मी नज़्में और ग़ज़ल। हालांकि इन प्रयोगों का कोई औचित्य नज़र नहीं आता और न ही नाटकों में इनके प्रयोग प्रभावी हुए। अभिनेताओं को आशु रचना की छूट देने वाले सत्यदेव दुबे का सारा ध्यान अभिनेय पक्ष पर ही रहा

चाहे वह नाटक कोई भी कैसा भी क्यों न हो। गीत संगीत से भरपूर 'हयवदन' में भी उनका सारा जोर अभिनेय पर था, संगीत पर नहीं। उन्होंने कई मौलिक नाटकों की रचना भी की लेकिन नाटककार के रूप में सत्यदेव दुबे कमजोर साबित हुए।

सत्यदेव दुबे के बाद जिस निर्देशक ने अपनी निजी रंग शैली की तलाश की उनमें 'व.ब. कारंत' का नाम सर्वोपरि है। NSD में अल्काजी के बाद निदेशक का पद संभालते हुए कारंत ने पाश्चात्य रंगदृष्टि की अपेक्षा भारतीय पारंपरिक लोक रंगमंचीय तत्त्वों को अपने निर्देशन का आधार बनाया। निदेशक का पद संभालते ही 'अंधेर नगरी' (भारतेंदु) का प्रदर्शन करके कारंत ने पारंपरिक लोक शैली के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए लोकशैली की महत्ता को स्थापित किया। "उनकी रंगदृष्टि में दक्षिण और उत्तर भारत के सार्थक रंगतत्त्वों का अद्‌भुत संश्लेष देखने को मिलता है। इसलिए नाटक चाहे कन्नड़ में किया हो या हिंदी में पंजाबी में या उर्दू में, उसकी मूलभाषा, संरचना और प्रस्तुति शैली चाहे जो भी रही हो, उनके प्रदर्शन में संगीतमय और प्रबल बिंबात्मक कारंतीय विशिष्ट शैली की स्पष्ट छाप साफ तौर से देखी जा सकती है।"[10]

'चंद्रगुप्त' (प्रसाद), 'सुनो जनमेजय', 'जो कुमार स्वामी', 'छोटे सैयद बड़े सैयद', 'हयवदन', 'घासीराम कोतवाल', 'विशाख', 'स्कंदगुप्त' आदि कारंत द्वारा मंचित प्रमुख नाटक हैं। 8वें दशक में लोक शैली के प्रयोग की जो धारा शुरू हुई उसमें कारंत का योगदान अक्षुण्ण है। "नाट्य संगीत, नृत्य संरचना लोकतत्त्वों का रचनात्मक उपयोग और सहजता- ब.व. कारंत के रंगकर्म की बुनियाद है।"[11] अल्काजी की भव्य प्रस्तुति, पाश्चात्य रंग दृष्टि की बजाय भारतीय लोक शैली, सत्यदेव दुबे के रिकार्डेड संगीत की बजाय, रचना में घुलने मिलने वाले आवश्यक कारक के रूप में संगीत का प्रयोग कर कारंत ने अपनी पहचान रंगमंच के क्षेत्र में दर्ज करायी। 'अंधेर नगरी' के प्रदर्शन में अनुष्ठानात्मक-वातावरण, नृत्य-गीत संगीत, लोक रंग रूढ़ियों का खुला इस्तेमाल, राजा के अभिनय में यक्षगान की विभिन्न गतियाँ, परंपरागत गेरुए और बसंती रंगों का प्रयोग करके नाटक, भाषा, शिल्प, प्रस्तुति, प्रभाव सभी दृष्टियों से इसे एक भारतीय रंगदृष्टि की कलात्मक प्रस्तुति बना दिया। अंत में महंत को स्वयं चौपट राजा की कुर्सी पर बैठाकर कारंत ने न केवल नया मौलिक प्रयोग किया वरन् 'अंधेर नगरी' को एक नए समकालीन अर्थ में प्रस्तुत किया जिसका गुंजायमान अनवरत चलता रहेगा। कारंत की 'अंधेर नगरी' पूरे देश को

प्रतिबिम्बित करती है। 'चंद्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', 'विशाख' आदि नाटकों का प्रदर्शन कर कारंत ने अभिनेय न कहे जाने वाले प्रसाद के नाटकों को भी मंचित करने का साहस दिखाया, हालांकि मंचन इतना प्रभावशाली नहीं हुआ लेकिन प्रयोग की दृष्टि से नई दिशाओं को प्रशस्त करने वाला जरूर बना।

अल्काजी ने भव्य प्रस्तुति वाले नाटकों को, सत्यदेव दुबे ने यथार्थवादी दृश्यबंध वाले नाटकों को तथा कारंत ने लोकशैली की संभावना वाले नाटकों को मंचित कर रंगमंच की तीन धाराओं का अन्वेषण कर, अलग-अलग अर्थ संभावनाओं की सृष्टि की और आगामी रंगकर्म को प्रोत्साहित किया।

कारंत ने शेक्सपीयर के 'मैकबेथ' की प्रस्तुति 'बरनमवन' नाम से यक्षगान शैली में करके पारंपरिक लोक रंग तत्त्वों के सामर्थ्य एवं सार्थकता को पहचान दी। 7वें-8वें दशक में नई रंग शैली की पहचान के क्रम भारतीय पारंपरिक, क्षेत्र विशेष शैली का प्रयोग बहुत ज्यादा हुआ। शांता गाँधी ने संस्कृत नाटक 'मध्यमव्यायोग' (1965), 'भगवद्ज्जुकीयम्' (1969) के अलावा 'जस्मा ओडन' (1968) भवई शैली में प्रस्तुत कर गुजरात की पारंपरिक रंग शैली से अवगत कराया।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में हुए प्रयोगों के अतिरिक्त अनामिका के लिए श्यामानंद जालान द्वारा निर्देशित 'लहरों के राजहंस' (1984), 'शुतुर्मुर्ग' (1967) 'एवं इंद्रजीत' (1968), 'दिशांतर' द्वारा ओम शिवपुरी के निर्देशन में 'आधे अधूरे' (1969), 'अभियान' के लिए रजिन्दर नाथ द्वारा 'एक शून्य बाजीराव', 'पगला घोड़ा', जयपुर में 'अमेच्योर आर्टिस्ट्स एसोसिएशन' के लिए मोहन महर्षि द्वारा निर्देशित 'आषाढ़ का एक दिन', 'सुनो जनमेजय' (1969) आदि मंचनों ने शौकिया मंडलियों के रंगकार्यों की दिशा को रेखांकित किया।

पारंपरिक रंग शैलियों के प्रयोग की दृष्टि से 'हबीब तनवीर' अपनी विशिष्ट शैली उभारते है। छत्तीस गढ़ी परंपरागत लोक कलाकारों द्वारा उन्हीं की भाषा में काम करके तनवीर एक नया प्रयोग करते हैं। उनका पूरा दल विभिन्न नाटकों को प्रस्तुत करता है, लेकिन सारे नाटकों में छत्तीसगढ़ी शैली का समावेश करके। 'शतरंज के मोहरें', 'आगरा बाजार', 'चरणदास चोर', 'मिट्टी की गाड़ी' उन्हीं के द्वारा रचित और मंचित नाटक है जिनमें 'चरणदास चोर' और 'आगरा बाजार' का अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है। तनवीर "भारत के उन गिने-चुने निर्देशकों में से एक हैं, जिन्होंने पश्चिमी और

भारतीय नाट्य परंपराओं और रंग-शैलियों के पारम्परिक मेल-जोल से अपनी एक निजी शैली तैयार की और लगातार एक के बाद एक कई सुप्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण प्रस्तुतियाँ करके उस शैली को केवल भारत में ही नहीं, विदेशों में भी उतना ही लोकप्रिय बनाया।"[12]

यह सही है कि तनवीर ने छत्तीसगढ़ी लोकशैली का इतना रचनात्मक प्रयोग किया कि ब्रेख्त के नाटक 'द गुड वुमेन ऑफ सेत्जुआन' को भी छत्तीसगढ़ी में प्रस्तुत कर दिया, लेकिन यह भी सही है कि सभी आलेखों की एक ही शैली में प्रस्तुति में कुछ नाटकों को बेवजह की संगीतमयता प्रदान करके उनके वास्तविक अर्थ को धूमिल कर दिया। 'जिन लाहौर नई देख्या को जम्या नई' तथा 'बहादुर कलारिन' के संदर्भ में यही बात हुई। तनवीर अभिनेता को आशु रचना की छूट देते हैं लेकिन नाटक अन्य अभिनेताओं (छत्तीसगढ़ी परंपरागत कलाकार को छोड़कर) द्वारा करने पर उतने प्रभावशाली नहीं बन पाते। लेकिन लोक शैली के रचनात्मक इस्तेमाल में हबीब तनवीर के नाटक एवं प्रदर्शन दोनों विशिष्ट स्थान रखते हैं।

परंपरागत लोकशैलियों का स्थानीय बोली के साथ रचनात्मक प्रयोग करने में हबीब तनवीर के बाद रतन थियम है। रतन थियम ने मणिपुरी बोली में, मणिपुरी नृत्य विधान तथा रंगमंचीन परिकल्पनाओं का प्रयोग करके अपनी एक अलग शैली विकसित की। 'अंधा युग' का मणिपुरी लोकशैली में प्रदर्शन उनकी एक मौलिक सोच को प्रस्तुत करता है। किसी अन्य भाषा में किया गया 'अंधा युग' का यह संभवत: प्रथम अनुवाद है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्र रहे रतन थियम ने 'अंधा युग' को संपादित करके, पांचवा अंक पूरा काटकर, गांधारी के साथ एक सखी की कल्पना करके मौलिक दृष्टि का परिचय दिया। "कथानक का बहुविध रचनात्मक इस्तेमाल, अश्वत्थामा और कृतवर्मा की चिनगारियाँ छोड़ती प्रभावशाली तलवार बाजी, कई घोड़ों वाले गतिशील रथ से तीव्रतर होते अश्वत्थामा के संवादों एवं क्रियाकलापों का अपूर्व बिंब समेत पांचवें अंक में दुर्योधन और अन्य मृतकों के अंतिम संस्कार का अनुष्ठानात्मक प्रत्यक्ष प्रदर्शन एवं मृत्यु संबंधी एक मणिपुरी लोकगीत का सार्थक उपयोग, दर्शकों के दाये-बाये से आते-जाते पात्र, काले, सफेद और लाल रंगों का मनोवैज्ञानिक आधार पर सटीक प्रयोग, लोकनाटकों की भांति न्यूनतम मंचोपकरणों के कल्पनाशील इस्तेमाल से बनती-मिटती सांकेतिक मंच-सज्जा, विशिष्ट अस्त्र शस्त्र, वेशभूषा एवं रूपविन्यास का रोचक उपयोग जैसी अनेक ऐसी विशेषताएँ है जो बरबस ध्यान खींच लेती है।"[13]

लेकिन प्रभावशाली होते हुए भी यह प्रस्तुति क्या मूल अर्थ को उतना ध्वनित कर पाती है जितना अल्काजी एवं दूबे की प्रस्तुति में हुआ? क्या यह सच नहीं है कि यह रतन थियम का 'अंधा युग' ज्यादा लगता है 'धर्मवीर भारती' का कम।

7वें-8वें दशक के अन्य महत्त्वपूर्ण निर्देशकों में रजिन्दर नाथ, एम.के. रैना, बंसी कौल आदि है। रजिन्दर नाथ 'अभियान' के संस्थापक निर्देशक हैं। अपने आरंभिक रंगकर्म की शुरूआत अभिनय (मिट्टी की गाड़ी, निर्देशक हबीब तनवीर) से करने वाले रजिन्दर नाथ ने विविध रंगशैलियों के नाटक प्रस्तुत किए। 'बाकी इतिहास', 'पगला घोड़ा', 'पंछी ऐसे आते है', 'गिनीपिग', 'उध्वस्त धर्मशाला', 'ताम्रपत्र', 'कन्यादान', 'घासीराम कोतवाल', 'जात ही पूछो साधु की', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'लहरों के राजहंस', 'हयवदन', 'तोता बोला', 'अंजी' आदि नाटकों का निर्देशन रजिन्दर नाथ ने किया। अपने युग के अन्य निर्देशकों की तरह पश्चिमी नाटकों का निर्देशन न करके, प्रतिबद्ध होकर केवल भारतीय नाटकों का निर्देशन रजिन्दर नाथ ने किया। इस कारण से इन्हें सत्यदेव दूबे की परंपरा में रखा जा सकता है। लेकिन यह भी सच है कि रजिन्दर नाथ ने हिंदी मौलिक नाटकों की बजाय पूर्व मंचित नाटक या प्रसिद्ध अनूदित रचनाओं का मंचन ही ज्यादा किया। रजिन्दर नाथ किसी पूर्व विशिष्ट शैली या पद्धति में न बंधकर, तकनीकी चमत्कार और अतिनाटकीयता की बजाय सादगी, सरलता, संवेदनशीलता और सहज अभिनय से प्रभावित करने का प्रयास करते है। कलाकारों को आशु रचना के लिए व्यापक स्वतंत्रता देकर अभिनय पक्ष को ज्यादा महत्त्व देते है। रजिन्दर नाथ इस दृष्टि से भी सबसे अलग है कि उन्होंने नाटककार का सम्मान करते हुए एक दो अपवादों को छोड़कर किसी रचना में हेरफेर या संपादन-संशोधन नहीं किया। 'आदमी जो मछुआरा नहीं था' (मृणाल पांडे), 'एक दूनी तक' (सुरेंद्र वर्मा), 'उचक्को का कोरस' (अविनाश मिश्र) आदि का निर्देशन करके रजिन्दर नाथ ने मौलिक नाटकों के प्रति अपनी विश्वनीयता भी जाहिर की है।

रजिन्दर नाथ मौलिकता, कल्पनाशीलता और वाचिक अभिनयात्मकता की दृष्टि से किंचित विवादास्पद हैं, लेकिन यह भी सच है कि अपने युग की लोकशैली की भरमार तथा अतिनाटकीयता के बीच रजिन्दर नाथ सादगी पूर्ण प्रस्तुति देकर अलग राह का सूत्रपात करते नज़र आते हैं।

इसी युग के एक और प्रभावशाली निर्देशक हैं- बंसी कौल। 'आला अफसर', 'सगुन पंछी' के प्रदर्शन से प्रसिद्ध हुए बंसी कौल भी लोक नाट्य युक्तियों का प्रयोग बखूबी करते है। 'सगुन पंछी'

(लक्ष्मी नारायण लाल) में नाटकीय निर्देश न होने के बावजूद बंसी कौल में मुखौटों का प्रयोग करके इस नाटक को एक नई छवि प्रदान की। मुखौटों या मुखौटों जैसी साज-सज्जा के प्रयोग के मामले में बंसी कौल अपने समकालीनों से विशिष्ट नज़र आते हैं।

मोहन महर्षि ने 'संकेत' एवं 'एमेच्योर अस्सिटेन्टस् ऐसासिएशन' की स्थापना करके 'एवं इंद्रजित', 'आषाढ़ का एक दिन', 'दो जज का मुकदमा' आदि नाटक मंचित किए। मोहन महर्षि ने 'अंधा युग' को मॉरिशस में प्रस्तुत करके अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी रंगमंच की पहचान दर्ज करायी।

7वें एवं 8वें दशक में निर्देशकों ने अपनी निजी शैली की रचना कर, रंगमंच पर अपनी धाक जमाई। अभियान, दशांतर आदि रंगमंडलियों की सकारात्मक प्रतिद्वंद्विता ने रंगमंच को नए शिखर पर पहुँचाया तथा प्रयोगों को नई दिशा देने का काम किया। लेकिन हम यह भी देखते है कि अपनी निजी शैलियों के चक्कर में अधिकांश रचनाएँ पीछे छूट गई। मौलिक नाटकों की उपेक्षा तथा अनुवादों पर जोर ने नाटककारों को हतोत्साहित एवं उपेक्षित कर दिया। प्रतिद्वंद्विता में अनेकों बार मंचित हो चुके सफल नाटकों को ही बार-बार अनेक रंगमंडिलयों ने खेला। अनूदित रचनाओं को खेलने वाले एक अन्य निर्देशक है- एम.के. रैना। फिल्म व रंगमंच दोनों से जुड़े एम.के. रैना अभिनेता और निर्देशक दोनों है। 1980 के बाद रंगमंच की दयनीय अवस्था में एम.के. रैना की रंगसंक्रियता, प्रयोगशीलता, कलात्मकता ने रंगकर्म को जीवंत बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अमाल अल्लाना, अरुण कुकरेजा, बी.एम. शाह, बलराज पंडित, ओम शिवपुरी, त्रिपुरारी शर्मा, विजय सोनी, विजया मेहता, रामगोपाल बजाज, जयदेव हट्टगंडी, के.एम. पणिक्कर, दयाप्रकाश सिंहा, प्रसन्ना, देवेन्द्रराज अंकुर, अरविंद गौड़ नई पीढ़ी के निर्देशक हैं जिन्होंने 8-9वें दशक में अपनी निर्देशकीय प्रतिभा का परिचय देते हुए नई जमीन तोड़ने की कोशिश की है।

अमाल अल्लाना ने 'महाभोज' (1983) की भव्यात्मक प्रस्तुति तथा 'आधे-अधूरे' को मुक्ताकाशी रंगमंच पर कोरस का प्रयोग करके नया प्रयोग करने की कोशिश की। 'दि वर्कशॉप' नामक नाट्य दल की स्थापना तथा 1978 में 'स्टूडियों-1' की स्थापना करके तकनीक-समृद्ध प्रस्तुतियां दी। 'खामोश अदालत जारी है', 'किंग लियर', 'आषाढ़ का एक दिन' की प्रस्तुति भी अमाल अल्लाना की विशिष्ट प्रस्तुतियाँ है। "मौलिक व्याख्या, बड़े-बड़े यथार्थवादी दृश्यबंध, संगीत और प्रकाश का

कल्पनाशील प्रयोग, तकनीकी समृद्धि और प्रस्तुति की एक मंथर किंतु सुनिश्चित गतिलय उनके प्रदर्शनों की सामान्य विशेषता है।"[14] अल्काजी की पुत्री अमाल अल्लाना प्रदर्शन, दृश्यबंध के स्तर पर उन्हीं की परंपरा को आगे बढ़ाती नज़र आती है। उनकी शैली में एक प्रकार की अभिजात्यता और पाश्चात्य दृष्टि का प्रभाव झलकता है।

फैजल अल्काजी अंग्रेजी नाटकों के प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध है। बी.एम. शाह तथा बलराज पंडित ने स्वयं नाट्य रचना करके उन्हें प्रस्तुत किया। बी.एम. शाह के 'त्रिशंकु' और 'राह ये मात' नाटक बहुत प्रसिद्ध है। अन्य निर्देशकों ने भी इन नाटकों को प्रस्तुत किया। युवा आक्रोश तथा पीढ़ीगत अंतर को स्पष्ट करते ये नाटक शिल्प व भाषा दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। 'दिशांतर' के सह-संस्थापक रहे बी.एम. शाह ने लोक, यथार्थवादी, पारसी, एब्सर्ड इत्यादि विभिन्न शैलियों में प्रदर्शन किए। बी.एम. शाह एब्सर्ड और पारसी पद्धति के प्रदर्शन में विशेष माहिर है। 'बुलबुल सराय', 'योर्स फेथफुली', 'वेटिंग फॉर गोदो', 'मशकिरी हूर', 'घासीराम कोतवाल' आदि उनके प्रमुख मंचित नाटक हैं। कुछ नया करने की दिशा में बी. एम. शाह ने पीछे मुड़कर पारसी रंग तत्त्वों को ग्रहण किया तथा उसका रचनात्मक उपयोग किया।

'दिशांतर' के अन्य सदस्यों में रामगोपाल बजाज भी है। हिंदी के मौलिक नाटकों की प्रस्तुति में रामगोपाल बजाज अग्रण्य है। 'धुव्रस्वामिनी', 'स्कंदगुप्त', 'आषाढ़ का एक दिन', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', 'अजात घार', 'पाप और प्रकाश', 'द सीगल', 'सूर्यास्त', 'कैद-ए-हयात', 'एक पुरुष : डेढ़ पुरुष' उनके प्रमुख मंचन हैं। दूरदर्शन व फिल्मों से भी जुड़े रामगोपाल बजाज ने अभिनय पक्ष में नए आयामों की संभावनाओं को उजागर किया। 'सूर्य की अंतिम किरण से...' नाटक में अभिनेताओं द्वारा संवादों को दबाकर विवशतापूर्ण बोलने की संयत/नियंत्रित अभिनय-शैली के साथ नस-तोड़ सन्नाटे का अत्यंत नाटकीय प्रयोग उन्होंने किया।

रंगमंच पर अन्य कलाओं का समावेश भी होता है। नाट्यशास्त्र में रंगमंच सभी कलाओं (चित्रकला, नृत्य, गायन, वादन आदि) के उचित समावेश की बात करता है। 8वें दशक में नए प्रयोगों व शैलियों के अन्वेषण की प्रक्रिया में भरत के नाट्यशास्त्र पर भी पुनर्विचार हुआ। नाट्यशास्त्र में वर्णित शैलियों, अभिनय के प्रकारों, मंच के प्रकारों पर व्यापक विचार-विमर्श हुआ तथा उससे अनेक तत्त्व निर्देशकों ने ग्रहण किए। अन्य कलाओं का समावेश करके, रंगमंच पर मल्टी मीडिया के प्रयोग का श्रेय

अरूण कुकरेजा को है। फिल्मों से निजी और प्रत्यक्ष रूप से जुड़े अरुण कुकरेजा ने अनेक नाटकों के मंचन में चित्र, नृत्य, वादन से जुड़े विशिष्ट लोगों को मंचन का भागीदार बनाया। 'निर्भीक विद्रोहियों' में रूसी अभिनेत्री वितोलिना लोबाच को रंगमंच पर उतारा। सरोद वादक अमजद अली खान, राजेश खन्ना, रविशंकर, हरि प्रकाश चौरसिया, एम.एफ. हुसैन, धीरज चौधरी जैसे विशिष्ट कलाकारों का मंचन में अरुण कुकरेजा ने इस्तेमाल करके पेंटिंग, कार्टून, चित्रकला, वादन आदि कलाओं को रंगमंचीय कला में मिलाने की कोशिश की। लेकिन उनकी प्रस्तुतियों में ये कलाएं अपना उतना प्रभाव व्यक्त नहीं कर पायी तथा भर्ती की कलाओं के रूप में ही सामने आई। 'रोमियो जूलियट', 'दशानन', 'हयवदन', 'चार दिन', 'लव लैटर्स' आदि उनके प्रमुख मंचित नाटक है।

8वें दशक में परंपरागत लोक रंगमंचीय तत्त्वों का ग्रहण करने की जो प्रवृत्ति शुरू हुई उसमें अन्य तत्त्वों को मिलाकर नई शैली की उद्‌भावना करने वाले भारतीय निर्देशकों में 'के.एम. पणिक्कर' तथा 'प्रसन्ना' प्रमुख हैं। 8वें दशक की यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि पारसी, लोक रंगमंच के साथ-साथ संस्कृत कालीन रंगमंच तथा नाटकों की तरफ निर्देशकों ने ध्यान देकर अखिल भारतीय स्तर पर रंगमंच को समृद्ध बनाया। केरल के के.एम. पणिक्कर ने 'मध्यम व्यायोग', 'उरूभंग', 'कर्णभारम्' जैसे संस्कृत नाटकों तथा 'दायरे', 'सूर्यस्थान', 'पशु गायत्री', 'थैयम थैयम' जैसे स्वयं रचित नाटकों के साथ-साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'राजा' की प्रस्तुति करके नाट्य व रंग जगत में अपनी विशेष पहचान बनाई। स्पेस के खुले प्रयोग के साथ कूडिआट्टम, कथकली आदि अपने क्षेत्र की लोक रंग युक्तियों का प्रयोग करके संस्कृत नाटकों का उनका मंचन एक ताल में बंधे हुए दृश्यकाव्य सा प्रतीत होता है। अन्य निर्देशक जहाँ लंबे नाटक को कांट-छांट कर, संशोधित करके उसे लघु करके प्रस्तुत करते हैं, वहीं पणिक्कर एक छोटे से नाटक को लंबा खींचकर प्रस्तुत करते हैं। छोटे से दृश्य को नृत्य, गायन आदि का प्रयोग करके पणिक्कर नृत्य कला के बहुत नज़दीक जाकर प्रदर्शन करते नज़र आते हैं। मुखसज्जा, वेशभूषा, अलंकरण में भी कथकली, कूड्डिआट्टम की शैलियों का प्रयोग उन्होंने किया है। मृतप्राय संस्कृत रचनाओं तथा शैलियों में नए प्रयोगों का समावेश करके जीवंत बनाने का काम के.एम. पणिक्कर ने किया। यथार्थवाद की अपेक्षा मानवेत्तर सृष्टि का अत्यंत नाटकीय इस्तेमाल पणिक्कर की निजी विशेषता है।

महिला निर्देशिकाओं में त्रिपुरारी शर्मा, गिरीश रस्तोगी ने सराहनीय काम किया है। त्रिपुरारी शर्मा

नाटककार और निर्देशक दोनों है। 'अक्स पहेली' और 'बहू' जैसे नाटक लिखने वाली त्रिपुरारी शर्मा के नाटक काव्य की दृष्टि से संवेदनशील है लेकिन शिल्प के स्तर पर ज्यादा प्रभावशाली नहीं बन पाते। 'भानु भारती' द्वारा निर्देशित 'बहू' अच्छे निर्देशन के बावजूद विरोधाभासी प्रवृत्तियों के कारण प्रभावी नहीं बन पाया। 'अक्स पहेली' रंगमंच के कलाकार और निजी जीवन के चरित्रों के विरोधाभास का रोचक नाटक है।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से अभिनय में दक्षता प्राप्त करने वाले अनेक अभिनेताओं ने कालांतर में निर्देशन में हाथ आजमाया। मनोहर सिंह, ओम शिवपुरी, जयदेव हट्टगंडी आदि ऐसे ही कलाकार हैं।

ओम शिवपुरी दिशांतर के अन्य सदस्य हैं जो अभिनेता होने के साथ-साथ कुशल निर्देशक और व्यवस्थापक भी हैं। 'तुगलक', 'कंजूस' (मौलियर), 'सुनो जनमेजय', 'एवं इंद्रजित', 'आधे-अधूरे' आदि इनके प्रमुख मंचित नाटक है।

नवें दशक में महिला निर्देशकों में गिरीश रस्तोगी, अनामिका हक्सर महत्त्वपूर्ण हैं। गिरीश रस्तोगी ने कुछ उपन्यासों 'रंगनाथ की वापसी- रागदरबारी' का नाट्य रूपांतरण तथा कुछ मौलिक नाटकों की प्रस्तुति कर उत्तर प्रदेश (गोरखपुर) में रंगकर्म के कार्य को आगे बढ़ाया। 'निराकार' की संस्थापक अनामिका हक्सर ने प्रत्येक शब्द को बिंब में बदलकर बिंबात्मक रंगभाषा की तलाश की है। उनकी यह तलाश आज भी जारी है। बिंबों के अतिरिक्त आग्रह के कारण कभी-कभी उनका दृश्यत्व श्रव्यत्व पर हावी भी हो जाता है।

अमिताभ श्रीवास्तव, अजय सोनी, अमिताभ दास गुप्ता, राजेन्द्र गुप्त 9वें दशक में उभरे अन्य निर्देशक हैं जो अभी तक निर्देशन में हाथ आजमा रहे हैं।

रंगकर्मियों का जो उत्साह, नई शैली की खोज, निजी रंगशैली का अन्वेषण 8वें दशक में दिखा वो इधर 9वें दशक में आकर समाप्त प्राय: न सही लेकिन क्षीण अवश्य होता जा रहा है। नाटकों में भी कोई विशिष्ट, कालजयी कृति 9वें दशक में नहीं उभरती। 7वें-8वें दशक के रंगकर्म का जो प्रभाव नाटककारों पर पड़ा वह भी 9वें दशक में आकर कम होता जा रहा है।

ऐसा नहीं है कि 7-8वें दशक में प्रयोग केवल निर्देशकों ने किए या नई शैली की तलाश

केवल निर्देशकों ने की। रंगकर्म का प्रभाव नाटककारों पर भी पड़ा तथा अनेक नाटककारों ने शिल्प के स्तर पर अनेक प्रयोग किए।

विषय-वस्तु में वैविध्य के साथ-साथ नाटककारों ने शिल्प में भी वैविध्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। ऐतिहासिक, पौराणिक कथानकों तथा मिथकों के प्रयोग के स्तर पर भी अनेक शैलियाँ सामने आयी। ऐतिहासिक कथानकों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करके उसमें आधुनिक समस्याओं का समावेश करने में 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', 'आठवाँ सर्ग' (सुरेंद्र वर्मा), 'माधवी', 'हानूश' (भीष्म साहनी), 'प्रजा ही रहने दो' (गिरिराज किशोर), 'कथा एक कंस की' (सुशील कुमार सिंह) आदि नाटक प्रमुख हैं।

मिथकों को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत करने में 'देवयानी का कहना है', 'अरे मायावी सरोवर', 'द्रौपदी' आदि नाटक प्रमुख है। 'देवयानी का कहना है' में देवयानी एक मिथक है, 'द्रौपदी' में नारी की स्थिति को द्रौपदी की तरह दिखाया गया है लेकिन यहाँ उसके पांच पति न होकर एक ही पति में पाँच रूप विद्यमान है। 'अरे मायावी सरोवर' में तो शंकर शेष ने राजा-रानी को आम बोलचाल की भाषा ही नहीं वरन् अंग्रेजी के शब्द तक बुलवाएँ हैं। रानी को यहाँ राजपाट की चिंता न होकर पापड़ बेलने, बच्चों की शिक्षा, परीक्षा, दही-बड़े आदि की चिंता ज्यादा है जो रानी को एक सामान्य स्त्री बना देता है। हालांकि यह प्रयोग उतना प्रभावी नहीं बन पाया है लेकिन प्रथम प्रयास की दृष्टि से रोचकता पूर्ण लगता है।

पौराणिक चरित्रों तथा आधुनिक पात्रों दोनों को साथ रखकर उनके चरित्र की समानताओं और समस्याओं को साथ-साथ दिखाकर तनाव उत्पन्न करने में 'एक और द्रोणाचार्य' (शंकर शेष) प्रभावित करता है। एक तरफ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा आदि अन्य पात्र है तथा दूसरी और डॉ. अरविन्द के जीवन के माध्यम से शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, मानवीय मूल्यों के ह्रास, शिक्षक-छात्र राजनीति को बखूबी दिखाया गया है। पौराणिक पात्रों को आधुनिक जीवन में लाकर उनसे सवाल-जवाब करने तथा उसकी समस्याओं को आज के समय जोड़कर देखने में 'शंबूक की हत्या' और दसवें दशक में अजय कुमार शुक्ल का 'ताजमहल का टेण्डर' अतिरोचक एवं प्रभावशाली है।

रंगमंच के प्रभावस्वरूप नाटककारों ने नए प्रयोग तथा अपने नाटक को प्रभावशाली बनाने के

TH23052

उद्देश्य से प्रतीकों का प्रयोग बहुतायत किया। आधुनिक समाज में मानवीय मूल्यों के ह्रास ने मनुष्य की पाश्विक प्रवृत्तियों को उजागर किया। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका ने मनुष्य को पशु रूप में देखने पर मजबूर किया। तत्कालीन समाज में मनुष्य इंसानियत भूलकर पाश्विक आचरण पर उतर आया। इस विचार तथा प्रवृत्ति को लेकर साहित्य में पशु प्रतीकों का एक चलन शुरू हो गया। नाटकों में भी शुतुरमुर्ग, तेंदुआ, मरजीवा, तिलचट्टा, नागपाश, सगुन पंछी, दरिंदे, तीसरा हाथी आदि शीर्षक पाश्विक प्रवृत्तियों के द्योतक हैं हालांकि नाटकों के कथ्य, शीर्षक को तथा इस प्रवृत्ति को बताने-समझाने में कमजोर साबित होते है, लेकिन पशु प्रतीकों के प्रयोग में 8वें दशक के नाटककार आगे रहे हैं। हिंदी ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं के नाटककारों ने भी इस दौरान इन प्रतीकों का इस्तेमाल किया। 'पगला घोड़ा', 'हयवदन', 'गिनीपिग' आदि अन्य भाषाओं के नाटकों के शीर्षक है।

लोक पारंपरिक नाट्य रूपों के प्रयोग में हालांकि निर्देशकों ने उत्साहवर्धक काम किया लेकिन नाटककार के स्तर पर विभिन्न लेखकों ने भी नाटक के कथ्य तथा शैली को पारंपरिक नाट्य रूपों से जोड़ा। "पश्चिमी यथार्थवादी जकड़ ढ़ीली पड़ने के साथ-साथ नाटक के रूप में अधिक सूखापन, कल्पनाशीलता और पारंपरिक युक्तियों और रूढ़ियों का प्रयोग बढ़ गया। संगीत और नृत्य तथा अन्य कल्पना प्रधान उपाय जो अभी तक नाटक लेखन में लगभग वर्जित से थे, उनको व्यापक स्वीकृति तथा मान्यता मिलने लगी जिससे नाटक को नई शक्ति मिलने और नाटककार के अपने विशाल दर्शक समुदाय से अपना सीधा रिश्ता कायम करने की संभावना बहुत बढ़ गई।"[15]

हिन्दी नाटककारों में इस प्रयोग को सफल बनाने वाले नाटककार 'मणि मधुकर' हैं। मणि मधुकर ने 'रसगंधर्व', 'खेला पालमपुर', 'बुलबुल सराय' में राजस्थानी ख्याल का प्रयोग करके हिंदी नाटकों में लोक नाट्य शैलियों का समावेश किया। 'रसगंधर्व' इस दृष्टि से बेहतरीन रचना है। आम जीवन में फैले ढोंग, बेईमानी, झूठ, दंभ, स्वार्थ आदि परिस्थितियों में कैद असहाय मानव की नियति को इस नाटक में बखूबी दर्शाया गया है।

'बुलबुल सराय' तथा 'खेलापालमपुर' नाटक में लोक नाट्य रूपों का यह प्रयोग अधिक सार्थक नहीं बन पाया है। 'बुलबुल सराय' में कूचामणि ख्याल और मांच शैली का प्रयोग भरती का अधिक लगता है।

संख्या की दृष्टि से प्रयोगों के सम्राट लक्ष्मी नारायण लाल ने भी 'एक सत्य हरिशचंद्र' में नौटंकी शैली का प्रयोग करके अपने नाटकों को प्रचलित रूढ़ियों से जोड़ा। बहती गंगा में हाथ धोते हुए अनेक नाटककारों ने लोक नाट्य शैलियों का प्रयोग करके प्रसिद्ध होने की कोशिश की। सरयू प्रसाद मिश्र के 'नारदमोह' आदि इसके अच्छे उदाहरण है।

रंगमंच की सक्रियता ने 60-70 के बाद अनेक कथाकारों कवियों को भी नाटक के प्रति आकर्षित किया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भीष्म साहनी, गिरिराज किशोर आदि ऐसे ही लेखक हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' नाटक नौटंकी शैली का इस्तेमाल करते हुए सार्थक नाट्य लेख है। इसका स्वरूप इतना लचीला है कि यह नाटक विभिन्न शैलियों में खेला गया। गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो' लोक नाट्य रूपों से समृद्ध है। ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग' दृश्यपटल की भिन्नता और व्यापकता में लोक-नाट्य रूपों के करीब अधिक लगता है।

8वें दशक में लोक नाट्य रूपों के प्रयोग की बाढ़ सी आ गई। नौटंकी शैली, भवई, कूड्डिअट्टम, यक्षगान, रामलीला आदि लोक नाट्य रूपों का प्रयोग नाटककारों ने किया। महिला लेखिकाओं में कुसुम कुमार ने 'रावणलीला' में रामलीला के तत्त्वों का समावेश किया।

नाटककारों द्वारा इन शैलियों का पूरा प्रयोग न करके एक-दो तत्त्वों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति भी दिखाई दी। शंकर शेष ने 'अरे मायावी सरोवर' में पशु मुखौटों का प्रयोग लोक नाट्य शैली के उपादान के रूप में किया। नट-नटी, सूत्रधार आदि का प्रयोग भी इस काल के नाटकों में मिलता है। लोक नाट्य रूपों के इस प्रचलित मुहावरे का असर 9वें दशक तक दिखा तथा इसके आवरण में 'हानूश', 'चारपाई', 'अजातघर' जैसी रचनाओं की व्यापक चर्चा नहीं हो पाई।

बहरहाल 'भगीरथ के बेटे' (विनोद रस्तोगी), 'जो राम रचि राखा' (मृणाल पाण्डे), 'सिंहासन खाली है' (सुशील कुमार सिंह), 'पोस्टर' (शंकर शेष) आदि परंपरागत नाट्य रूपों का प्रयोग करने वाली रचनाएँ हैं। 'पोस्टर' कीर्तन शैली में जयदेव के सुझाव से लिखा गया नाटक है जिसमें आदिवासी जीवन की समस्याओं को दिखाया गया है।

नए प्रयोगों के लिए रंगशैलियों को तलाशते नाटककार व रंगकर्मियों को पाश्चात्य रंगशैलियों ने भी आकर्षित किया। यथार्थवादी मुहावरों, लोक परंपरागत शैली के बाद नाटककारों का ध्यान ब्रेख्त पर

गया। पश्चिम में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मानवीय संवेदना की मृत्यु, अजनबीपन, युद्ध की विभीषिका में मानव अस्तित्त्व की पहचान का संकट उपस्थित हो गया। ऐसे में लेखकों व बुद्धिजीवियों ने 'एब्सर्डिटी' की धारणा को विकसित किया। उलजूलूल हरकते, संवादों का अटपटापन आदि एब्सर्डिटी में प्रयुक्त किया जाता है। 'वेटिंग फॉर गोदो' का तो हर भारतीय भाषा में अनुवाद तथा व्यापक पैमाने पर प्रदर्शन हुआ जिसने नाटककारों को प्रभावित किया। हिंदी नाटककारों में मुद्राराक्षस, सत्यव्रतसिंहा, लक्ष्मीकांत वर्मा, विपिन कुमार अग्रवाल आदि असंगत नाटकों की शैली अपनाते हैं।

आइनेस्को व बैकेट से पहले 'ताँबे की कीड़े' (भुवनेश्वर) से हालांकि यह शुरूआत हिंदी में हो चुकी थी लेकिन इसका स्पष्ट रूप 8वें दशक में ही उभरकर सामने आया। आपातकाल (1975) की स्थिति ने इस शैली का मार्ग और प्रशस्त किया। विपिन कुमार अग्रवाल की एकांकिया 'तीन अपाहिज', 'लोटन', मुद्राराक्षस के 'योर्स फेथफुली', 'संतोला', 'तिलचट्टा', 'मरजीवा' आदि नाटक असंगत नाटकों के पूरे शिल्प को न लेकर संवादों और स्थितियों में 'असंगतता' का निर्वाह करते है। 'योर्स फेथफुली' इस दृष्टि से सशक्त रचना है। यांत्रिक जीवन जीते ऑफिस कर्मचारी संवादों, कार्य व्यापार में उलजूलूल हरकतें करते स्थिति की भयावहता को क्रूरता से व्यक्त करते हैं तथा सोचने पर मजबूर करते हैं। तिलचट्टा, मरजीवा में स्थिति स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों में उलझकर रह जाती है।

लक्ष्मीकांत वर्मा का 'रोशनी एक नदी है' भी सशक्त रचना है। काशीनाथ सिंह का 'घोआस' नाटक बहुत ज्यादा 'स्लो' होने के कारण उब पैदा करता है कोई नया विचार सामने नहीं लाता। 'रसगंधर्व' (मणिमधुकर) भी कथानक के स्तर पर असंगत नाटक का उदाहरण है।

सत्यव्रत सिंहा का 'अमृतपुत्र' अवकाश प्राप्त व्यक्ति की मानसिकता को उजागर करने वाला असंगत नाटक है। हिंदी में असंगत नाटको की परंपरा आगे नहीं बढ़ पाई। अति भौतिकता और कृत्रिमता में असंगत नाटक पाश्चात्य दृष्टि का निर्वाह ही करते रहे। भारतीय संदर्भो में इसे फिर बैठाने के चक्कर में असंगत नाटक उलझे रह गए। समीक्षकों, आलोचकों ने भी इनके प्रति उपेक्षा का भाव रखा। इसलिए यह धारा एक बार प्रस्फुटित होकर जल्दी ही समाप्त प्राय हो गई।

8वें दशक में रंगमंच की सक्रियता ने सबसे बड़ा काम यह किया कि नाटककार अब केवल पढ़ने के लिए नहीं बल्कि रंगमंच के लिए नाटक लिखने लगे। प्रसाद युगीन पाठकीय नाटक अब कोई

नहीं लिखना चाहता था। हर तरह के नाटकों का मंचन करने के लिए आवश्यक तकनीकी सुविधाएँ अब मौजूद थी। हालांकि निर्देशकों के अहं भाव ने नाटककारों की संवेदना को चोट भी पहुंचाई और अधिक दृश्यत्व व प्रयोग के चक्कर में कुछ नाटक चालू मुहावरों में उलझकर किसी गहरी संवेदना को अभिव्यक्त नहीं कर पाए। फैसले का दिन (प्रणव कुमार), 'आह अमेरिका' (दयाप्रकाश सिन्हा), 'युद्ध मन' (ब्रजमोहन शाह), 'घरोंदा' (शंकर शेष), शूर्पनखा के चरित्र पर आधारित 'असुर सुंदरी' (उदयशंकर भट्ट) आदि ऐसे ही नाटक है।

रंग संकेतों, दृश्यबंध, अंकयोजना, दृश्यांतर आदि के विषय में भी नाटककारों ने प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया। अब अंक विभाजन की जगह केवल दृश्य योजना के नाटक लिखे गए तथा दृश्य परिवर्तन के लिए प्रकाश, तख्ती, ध्वनि आदि का प्रयोग किया गया। 'दुलारी बाई', 'प्रजा ही रहने दो', 'व्यक्तिगत' आदि केवल दृश्यों के नाटक है। 'योर्स फेथफुली', 'लोटन' आदि असंगत नाटकों में तो दृश्य तक परिवर्तन न होकर आदि से अंत तक अंकों के नाटक है। पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में नाटक को बांधकर मध्यांतर की व्यवस्था भी कुछ नाटककारों ने की। भरत के 'आस्वाद रस' से अलग मध्यांतर की इस व्यवस्था में रस खण्डित होने का खतरा आधुनिक नाटककारों को नहीं है। 'अरे मायावी सरोवर', 'तीसरा हाथी' आदि ऐसे ही नाटक हैं। नाटक के भीतर नाटक के शिल्प को भी अनेक नाटककारों ने अपनाया। 'रक्त कमल', 'एक सत्य हरिश्चंद्र', 'आइंस्टाइन', 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक के भीतर दूसरा नाटक के शिल्प को संजोने वाले नाटक हैं।

आम बोलचाल की भाषा में, आम जन जीवन की समस्याओं को परंपरागत लोक नाट्य शिल्प में प्रस्तुत कर अत्याधिक दर्शकों से जुड़ने की प्रवृत्ति ने एक नए शिल्प को भी जन्म दिया। पात्रों का दर्शकों की ओर मुखातिब होकर संवाद कहना, दर्शकों के बीच से पात्रों का स्टेज पर आना, आदि नाट्य युक्तियों का प्रयोग दर्शकों को साझीदार बनाने हेतु किया गया। 'सिंहासन खाली है', 'आज नहीं कल' आदि इन्हीं युक्तियों की रचना है।

रंग निर्देश नाटकों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मोहन राकेश ने अत्याधिक रंग निर्देशों का प्रयोग करके अपने नाटक को एकदम बांध दिया था। मंच योजना से लेकर हाव-भाव, ध्वनि, प्रकाश आदि तक के निर्देश उनके नाटकों में मिलते हैं। वेशभूषा संबंधी रंग निर्देशों को छोड़कर राकेश के नाटक सभी

पक्षों में रंग संकेत देते हैं। आगामी लेखकों ने हालांकि उनके इन अत्याधिक रंगसंकेतों को अनावश्यक तथा निर्देशक की कल्पनाशीलता को कुंद करने वाला बताया। लेकिन यह भी सच है कि राकेश की ध्वनि योजना, प्रकाश संबंधी संकेत उनकी रचना में घुले-मिले हैं तथा उनके अर्थ को स्पष्ट करते है। मुद्राराक्षस के अनुसार- "प्रकाश व्यवस्था तक निर्देश करने वाला लेखक अपनी रचना की नाटकीय संभावनाओं के प्रति आश्वस्त नहीं होता, तभी वह ऐसा करता है।... अक्सर अच्छे नाटक में 'नाटकीय निर्देश' बहुत कम होते हैं।"[16]

रंगकर्म की दिशा राकेश के समय उतनी प्रबल नहीं थी जितनी आगामी वर्षों में हुई। तत्कालीन समय के अर्थविहीन व थोड़े प्रदर्शनों को देखकर ही शायद राकेश ने इतने ज्यादा रंग संकेत दिए।

बहरहाल नाटक के उत्तरोत्तर विकास के साथ रंग संकेतों में कमी आनी शुरू हो गई तथा उसके स्वरूप में भी बदलाव आया। 7वें दशक में रंगकर्मियों की प्रयोगधर्मिता ने नाटक में संकेतों को अवश्य भी नहीं माना तथा अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का इस्तेमाल करके अपने ढंग से उन्हें प्रस्तुत किया। रंग संकेतों के माध्यम से नाटककार अपने कल्पनाशील रंगमंच तथा प्रस्तुतीकरण का ब्यौरा देता है जो निर्देशन में सुविधा देने के साथ-साथ पाठकों के लिए भी दृश्यत्व प्रदान करने में सहायता देता है। लेकिन 7-8वाँ दशक निर्देशक का रंगमंच रहा और उसने तरीके से नाटकों को संपादित संशोधित करके अपने निजी अर्थ प्रस्तुत किए। दृश्यांतर के लिए प्रकाश का प्रयोग बहुतायत किया जाता है- 'देवयानी का कहना है', 'सूर्य की अंतिम किरण से...', 'सुनो सेफाली' आदि नाटकों में ध्वनि व प्रकाश का मिला जुला प्रयोग किया गया है। रंग संकेतों में सुरेन्द्र वर्मा के बाद अधिकतर नाटककारों ने अधिक संकेत नहीं दिए है। ज्यादा से ज्यादा मंच सज्जा के संकेत तथा पात्रों के हाव-भाव के संकेत दिए जाते हैं। स्वदेश दीपक भी इसी परंपरा में आते हैं। मंच सज्जा को छोड़कर वे अत्याधिक संकेत देने से बचे हैं। सुरेन्द्र वर्मा जहाँ 'सूर्य की अंतिम किरण...' ओक्काक के स्वगत लंबे कथन में हाव-भाव, स्वर के उतार-चढ़ाव, नथुनों का फड़कना, सांसों का ऊपर होना आदि अभिनय संबंधी संकेत देते हैं, वहीं दीपक ने 'कोर्ट मार्शल' में मेजर रंजीत कपूर के स्वगत कथन में कोई संकेत नहीं दिया है। लेकिन उनकी भाषा उनके संकेतों का काम करती हुई अभिनेता को कल्पनाशीलता का पूरा मौका देती है। निर्देशेकों द्वारा लिखे गए नाटकों में निर्देशों की भरमार होती है क्योंकि वे आलेख कम, प्रस्तुती आलेख ज्यादा होते हैं।

रंगमंच को रंगद्वारी से अलग टेरेस, तलघर, छत आदि पर पहुँचाने के प्रयास इस दौर में हुए। रमेश बक्षी का 'गधे-घोड़े' टेरेज और आंगन रंगमंच को ध्यान में रखकर लिखा गया।

'अंधा युग' की सफलता ने काव्य नाटक लिखने की प्रेरणा भी नाटककारों को दी। 'एक कंठ विष पायी' (दुष्यंत कुमार), 'सूखा सरोवर' (लाल), 'सृष्टि की सांझ' (सिद्धनाथ कुमार), 'अग्निलीक' आदि काव्य नाटक सामने आए लेकिन इनमें से कोई भी अंधा युग जितना प्रभावशाली नहीं बन पाया।

7वें दशक में अस्तित्त्वहीन, मूल्यहीन, भौतिकता तथा मशीनीकरण ने सभी व्यक्तियों को प्रभावित किया। मनुष्य अब संज्ञा न बनकर सर्वनाम बनकर रह गया। इस विचार को नाटककारों ने पात्रों का नाम न देकर केवल वह, तुम, प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष, अ, ब, स, द आदि द्वारा प्रस्तुत किया। 'अजातघर' में प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष, 'रस गंधर्व' में अ, ब, स, द आदि इसी विचार के नाटक हैं। 'बुलबुल सराय' के पात्र स्वयं कहते हैं- "क्या करे भाई, इमरजेन्सी के बाद यह हिम्मत ही नहीं रही कि किसी से कह सके.... हमारा भी नाम है।"[17]

भरत के नाट्यशास्त्र से सूत्रधार, नट-नटी, भरत वाक्य, पूर्वरंग आदि का इस्तेमाल भी नाटककारों ने खूब किया। 'सिंहासन खाली है', 'अरे मायावी सरोवर' आदि अनेक नाटक इसकी पुष्टि करते हैं।

'कहानी का रंगमंच' 8वें दशक का महत्त्वपूर्ण प्रयोग साबित हुआ जिसमें कहानी का ज्यों का त्यों मंचन करके देवेन्द्रराज अंकुर ने एक नई विधा का, एक नए रंगमंच का प्रतिपादन एवं सूत्रपात किया। 1974 में निर्मल वर्मा की तीन कहानियों का 'तीन एकांत' नाम से प्रदर्शन कर अंकुर ने इस विधा की नींव रखी। इसमें कहानी का नाट्य रूपांतरण न करके बिना किसी साज-सज्जा व लाग लपेट के किस्सागो शैली में अभिनय के माध्यम से हूबहू प्रस्तुत किया जाता है। "अभिनेता की भूमिका यहाँ मात्र अभिनय की नहीं बल्कि कभी शुद्ध कथावाचक, कभी विवरणकार, कभी टिप्पणीकार, कभी व्याख्याकार, कभी स्वयं श्रोता, दर्शक, पाठक और अंततः चरित्र-कहानी के पहले दृश्य से अंतिम दृश्य तक लगातार चलती रहती है, सहज, सरल एवं अनायास प्रवाह के साथ।"[18]

सरल एवं सहज नज़र आने वाली यह प्रक्रिया प्रस्तुतीकरण के स्तर पर उनती ही कठिन एवं जटिल है। कहानी के रंगमंच से अलग कहानी के नाट्य रूपांतरण के साथ-साथ उपन्यास का नाट्य

रूपांतरण भी इन दिनों काफी प्रसिद्ध हुआ है। इसमें निर्देशक को पर्याप्त संपादन-संशोधन की गुंजाइश भी रहती है तथा उपन्यासकार इसे अपना सौभाग्य ही अधिक समझता है। 'बेगम का तकिया', 'स्पार्टाकस', 'मुख्यमंत्री', 'महाभोज', 'होरी', 'मित्रो मरजानी', 'रंगनाथ की वापसी', 'टट्टू', 'कभी न छोड़े खेत', 'ये आदमी ये चूहे', 'बंजारा टोला', 'मैला आँचल', 'रंगभूमि', 'तमस' आदि उपन्यासों के नाट्य रूपांतरण होकर इनके प्रदर्शन भी काफी हो चुके हैं। उपन्यास के मूल अर्थ की रक्षा हालांकि इतनी नहीं हो पाती क्योंकि प्रत्येक विद्या का अपना एक अलग आयाम होता है लेकिन रंगमंच के विस्तार की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है। अंकुर के 'कहानी के मंचन' में जहाँ कहानीपन की रक्षा पर ज्यादा जोर होता है वहीं इन रूपांतरणों में कृति नाटक बन जाती है। "देवेन्द्रराज अंकुर का कहानी का मंचन-मनोरंजन या तकनीकी युक्तियों के चमत्कार से अलग, अभिनेता को प्रतिष्ठित करते हुए.... रंगमंच का अपना अर्थ पाने की ही कोशिश है।"[19]

उपन्यासों के नाट्य रूपांतरण में महाभोज (मन्नू भण्डारी), मित्रो मरजानी (कृष्णा सोबती) आदि ही ज्यादा असरदार तरीके से अपने मूल मंतव्य को प्रस्तुत कर पाए।

उपन्यास, कहानी के बाद काव्य के नाट्य रूपांतर भी सामने आए है। 'कुआनो नदी', 'मुनादी', 'अंधेरे में', 'राम की शक्ति पूजा', 'मगध' आदि लंबी कविताओं के मंचन ने रंगमंच को और अधिक ग्राह्य तथा विस्तारित बनाया।

8वें दशक में निर्देशक का दबदबा रहा। कहानी, उपन्यास, काव्य के मंचन ने जहाँ रंगमंच को विस्तरित किया वहीं नाटककार के वर्चस्व को भी चुनौती दी। अनुवादों के मंचन से काम चलाने वाले निर्देशकों ने नौवें दशक में व्यवसायिकता की चुनौती को पहले से सफल मंचित नाटकों को मंचन करके पूरा करने की कोशिश की।

9वाँ दशक रंगमंच की दृष्टि से बहुत अधिक सफल नहीं रहा। 7वें-8वें दशक का उत्साह अब क्षीण होने लगा था। इस दशक मे रंगकर्म केवल अनुवादों और रूपांतरणों तक सीमित रह गया। इसके कई कारण थे। पहले कारण के रूप में बढ़ती महंगाई को देखा जा सकता है। 9वें दशक में बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, शासन की उथल-पुथल से विकास कार्यों का अवरूद्ध, होना आदि से व्यवसायिक मण्डलियाँ बिखरने लगी। स्थिति यह आ गई कि कलाकार को देने के लिए पैसे तक नहीं थे। अभिनेता

का भौतिक जीवन अत्यंत कठिनाईयों से भर गया। दूसरी और फिल्मों और दूरदर्शन की बढ़ती लोकप्रियता ने रंगमंच के अभिनेताओं को आकर्षित किया।

"इधर आठवें दशक के बाद हिंदी मंडलियाँ बिखरने लगी और रंगकर्मी सिनेमा या दूरदर्शन की ओर भागने लगे। अनेक नाटककारों ने नाटक लिखना बंद कर दिया। ऐसा नहीं कि रंगमंच एकदम समाप्त हो गया, बल्कि पहले जैसी उत्तेजना या तलाश का सिलसिला नहीं बना।"[20]

साधनों के अभाव में रंगमंडलियाँ निरंतर रंगकार्य नहीं कर पा रही थी। ओमशिवपुरी, मनोहरसिंह, मोहन महर्षि, उतरा बावरकर, नसीरूद्दीन शाह, अमरीश पुरी, अनुपम खेर, जयदेव हट्टगंडी, रोहिणी आदि अनेक अभिनेता पहचान और पैसे कमाने दूरदर्शन और सिनेमा में चले गए।

केवल अभिनेताओं और रंगकर्मियों का जाना ही इस दुर्दशा का कारण नहीं था वरन् हिंदी रंगकर्मियों का रंगकार्य भी इसके लिए जिम्मेदार था। हबीब तनवीर छत्तीसगढ़ी शैली में अब कुछ नया नहीं कर पा रहे थे और यह शैली अब लोकप्रिय नहीं रह गई थी। लोक रूपों की अधिकता से अधकचरी रचनाएँ ही सामने आ रही थी। 'रावणलीला' रामलीला के तत्त्वों से भरपूर होते हुए सशक्त रचना नहीं बना पाई। लोक रूपों के मूल तत्त्व को समझने बिना रंगकर्मी केवल नाच-गाने तक सीमित होकर लोक रूपों की भी धज्जियाँ उड़ाने लगे।

1983 तक रंगकर्मी रंगकार्य को जैसे-तैसे काम चलाऊ बनाए रखने में सफल हुए। लेकिन 1983 के बाद रंगमंडलियों का स्तर और भी गिर गया। नया थिएटर, दिल्ली आर्ट थियेटर, अभियान, स्टूडियो-1, यांत्रिक, रंगपीठ, ट्रांस यमुना थिएटर वर्कशाप, थिएटर एन्सैम्बल, सृजन, रंगसेतु, अभिकल्प, हमसब, शतरूप जैसी अनेक नाट्य संस्थाओं ने 1983 में एक भी नई प्रस्तुति नहीं की।

"राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की प्रस्तुतियों में भी पिछले कुछ वर्षों से लगातार स्तरीय गिरावट आती जा रही है और इस वर्ष (1983) की अधिकांश प्रस्तुतियाँ भी काफी हद तक ऐसे कच्चे-पक्के प्रदर्शन ही सिद्ध हुई।"[21]

अरुण कुकरेजा, फैजल अल्काजी जैसे निर्देशकों ने रंगमंच को फिल्मी आलेख के प्रदर्शन की तरह प्रस्तुत करने का प्रयास किया जिसमें कोई विशेष उपलब्धि नहीं मिली। अनूदित रचनाओं, सफल प्रस्तुतीकरण रचनाओं के प्रदर्शन ने रंगमंच को अनुवादों पर आधारित बना दिया।

नाटकों में भी कोई प्रभावशाली कृति सामने नहीं आई। नई रंग तकनीक से आतंकित होकर नाटककार दृश्यत्व के चक्कर में उलझा रह कर कोई प्रभावी रचना नहीं दे पाया और शब्दों के जाल में उलझ कर रह गया।

'काजर की कोठरी', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'बाढ़ का पानी', 'मुर्दे जिएगें', 'अपने-अपने खूंटे' आदि नाटक शब्द जाल में फंसकर किसी संवेदना को जागृत करने में असमर्थ रहे। 1983 में 'महाभोज', 'अक्स पहेली', 'बहू', 'बाँझ रात' के अलावा कोई भी नाटक चर्चित नहीं हुआ। 'जसमा ओडन' (शांता गांधी) लोक रंगमंच की एकमात्र सशक्त रचना बनकर सामने आई।

1983 में हंगरी नाटक 'गर्म कमरा' (केरेत्स करिंथी) का हेमा सहाय व अशोक मिश्र ने निर्देशन किया लेकिन हास्य व्यंग्य के अलावा यह नाटक किसी गहरी संवेदना को जागृत न करके, केवल हंसाने का माध्यम बनकर रह गया।

फिल्मों का प्रभाव इतना ज्यादा हो गया कि नाटककार अपने नाटकों को इससे मुक्त नहीं कर पाया। रक्त अभिषेक (दयाप्रकाश सिंहा), मीराकांत के नाटक, 'जादू जंगल' (राजेश जोशी) आदि रंगमंच के व्याकरण को समझे बिना, छोटे-छोटे दृश्यों में विभाजित होकर दूरदर्शन के नाटक अधिक बन गए और किसी चरित्र का विकास नहीं कर पाए। 1985 में सरकारी संस्थाओं द्वारा अनेक रंगमहोत्सवों का आयोजन कर नाटक और रंगकार्य को दोबारा जीवंत करने की कोशिश की लेकिन 1985 के बाद हिंदी नाटक और रंगमंच में फिर कुछ ठहराव आया।

लेकिन ऐसा नहीं है कि नवाँ दशक केवल गिरावट के स्तर का बयान करता रहा। पत्रकार और नाट्यकारों का एक दूसरे से जुड़ना, नई अभिनय नाट्य शैलियाँ, फोटो नाटक नामक नई विद्या का जन्म आदि कुछ उपलब्धियाँ भी नवें दशक की है। 'तालों में बंद प्रजातंत्र', 'रंग बंसती' आदि श्रेष्ठ नाटक भी सामने आए हैं।

बहरहाल 1985 के बाद नाटक क्षेत्र में पड़े सूखे को असगर वजाहत, स्वदेश दीपक जैसे नाटककारों ने पाटने की कोशिश की है। असगर वजाहत का 'जिन लाहौर नई देख्या....' नाटक भारत पाक विभाजन पर लिखा गया, इस कथानक का प्रथम नाटक है। जिसके हजारों मंचन हो चुके है। स्वदेश दीपक के 'कोर्ट मार्शल' और 'नाटक बाल भगवान' नौवें दशक के अंतिम वर्षों की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

इस दशक में निर्देशकों के वर्चस्व का इतना आतंक था कि स्वदेश दीपक को अपने नाटक की भूमिका में लिखना पड़ा कि- 'पूर्व कथन (प्रोलॉग) और अंतरालिका बाल भगवान की विषयवस्तु, संरचना और नाटकीय प्रभाव का अभिन्न अंग है) इसलिए नाटक को मंचित करते हुए इन्हें काटना विषय और विधा के साथ अन्याय होगा।'[22]

निर्देशक अनुवादों, रूपांतरणों का मंचन करते हुए संशोधन, संपादन के इतने आदी हो गए थे कि मूल रचना के अर्थ को समझने की भी जरूरत उन्हें नहीं लगती थी।

बहरहाल, दसवें दशक में फिल्म, दूरदर्शन का यह प्रभाव और गहराता गया तथा नाटकों के कथानक, विषयवस्तु, शिल्प में भी इससे बदलाव आया। समकालीन नाट्य परिदृश्य ने नाटककारों को प्रभावित किया। अपनी पिछली परंपरा के गुण-दोषों से सबक लेते हुए आज का नाटककार अब ज्यादा सतर्क हो गया है। शिल्प, शैली तथा कथावस्तु के स्तर पर नए नाटकों में काफी प्रयोग दिखाई दे रहें हैं।

1970 में बहस जहाँ नाटककार और निर्देशक के वर्चस्व की थी, वहीं बहस 1980-90 में फिल्म बनाम रंगकर्म की हो गई। अब नाटकों में फिल्म, तकनीक, नाटककार, निर्देशक का सामंजस्य भी हो गया अब मामला मीडिया बनाम रंगमंच के अस्तित्व का हो गया है।

मीडिया युग में अन्य कलाओं पर गहराते संकट के साथ-साथ रंगमंच के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिह्न लग गया है। लेकिन यांत्रिकता और मशीनीकरण की जगह जीवंत रंगकर्म निश्चय ही दर्शकों का साझीदार बनकर एक बार फिर समाज में अपनी पहचान बनाने में कामयाब होगा।

संदर्भ

1 'काल कोठरी', 'स्वदेश दीपक', वाणी प्रकाशन, 2002, कवर पेज- हेमंत कुकरेती

2 'नाटक और रंग परिकल्पना', गिरीश रस्तोगी, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, 1992, पृष्ठ सं. 19

3 'समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच', सं. नरेन्द्र मोहन, वाणी प्रकाशन, 2009, लेख- रंगमंच की प्रभुता और मौलिक नाट्य लेखन- डॉ. सत्येंद्र कुमार तनेजा, पृष्ठ सं. 167

4 'पहला रंग', देवेन्द्रराज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, 1999, पृष्ठ सं. 77

5 'नटरंग विवेक', नरनारायण राय, सन्मार्ग प्रकाशन, 1981, पृष्ठ सं. 12

6 'आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच', पृष्ठ सं. 126

7 वहीं, लेख- 'काम संबंधों की कमनीयता का नाटककार- सुरेन्द्र वर्मा', जयदेव तनेजा, पृष्ठ सं. 157

8 'समकालीन हिंदी नाटककार', गिरीश रस्तोगी, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, 1982, पृष्ठ सं. 61

9 वही, पृष्ठ सं. 75-76

10 'आधुनिक भारतीय रंगपरिदृश्य', जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, 1992, पृष्ठ सं. 87

11 वही, पृष्ठ सं. 89

12 'पहला रंग', देवेन्द्रराज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, 1999, पृष्ठ सं. 80

13 'रंगकर्म और मीडिया', जयदेव तनेजा, पृष्ठ सं. 199

14 'आधुनिक भारतीय रंग परिदृश्य', जयदेव तनेजा, पृष्ठ सं. 166

15 'आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच', पृष्ठ सं. 128

16 'योर्स फेथफुली', मुद्राराक्षस, भूमिका

17 'बुलबुल सराय', मणिमधुकर, पृष्ठ सं. 39

18 'पहला रंग', देवेन्द्र राज अंकुर, पृष्ठ सं. 153

19 'समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच', सं. नरेंद्र मोहन, लेख- 'कहानी- रंगमंच, नया मुहावरा', महेश आनंद, पृष्ठ सं. 173

20 'रस प्रसंग', लेख- हिंदी रंगमंच के एक सौ पच्चीस वर्ष, महेश आनंद, पृष्ठ सं. 43

21 हिंदी रंगकर्म- 'दशा और दिशा', जयदेव तनेजा, पृष्ठ सं. 303

22 'नाटक बाल भगवान', स्वदेश दीपक, भूमिका से

अध्याय-2

स्वदेश दीपक के नाटक : साहित्यिकता

अध्याय-2
स्वदेश दीपक के नाटक : साहित्यिकता

नाटक एक ऐसी कला है जो एक साहित्यिक कृति के रूप में जन्म लेती है लेकिन संपूर्णता रंगमंच पर प्राप्त करती है। आचार्य भरत भी नाट्यशास्त्र में सभी कलाओं से परिपूर्ण रंगमंच पर नाटक को संपूर्ण साकार मानते हैं। भारतेंदु अपने सारे नाटक स्वयं निर्देशित भी करते थे और कइयों में उन्होंने अभिनय भी किया। यहाँ रंगमंच और साहित्य में कोई विभेद नज़र नहीं आता। प्रसाद कालीन नाटकों में रंगमंच और नाटक में अलगाव नज़र आने लगता है। पारसी रंगमंच के द्वारा अभिनीत नाटक साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि के नहीं थे। जबकि जयशंकर प्रसाद के नाटक साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि के माने गए और नाट्यालोचकों ने उनकी व्याख्या में 'रंगमंचीय तत्त्व' को हाशिये पर रखकर, उन्हें केवल 'पाठ्य' बनाकर छोड़ दिया।

1950 के बाद रंगमंच की बढ़ती सक्रियता ने रंगमंच को शीर्ष पर पहुँचा दिया जिससे निर्देशकों का वर्चस्व रंगमंच पर स्थापित हो गया। अब निर्देशक साहित्यिक कृति को निर्देशन से कम आँकने लगे। यहीं से नाटक के साहित्यिक रूप बनाम रंगमंचीय प्रस्तुति का विवाद आरंभ हुआ। हालांकि इस विवाद के बीज प्रसाद काल में ही पड़ चुके थे लेकिन इसका पल्लवन-पुष्पन 1960 तक आते आते और तेज हो गया।

नाट्यालोचकों के लिए अब समस्या यह खड़ी हो गई कि सफल नाट्यकृति किसे कहा जाए? जो साहित्यिक गुणों से परिपूर्ण हैं? या जो रंगमंच पर सफल हैं? कुछ आलोचकों ने 'पाठ्य नाटक' और 'रंगमंचीय नाटक' नाम से अलग-अलग विधा ही बना दी, वहीं कुछ कभी इस पलड़े, कभी उस पलड़े में खड़े नज़र आते हैं। देश-विदेश में ऐसी अनेक कृतियाँ हैं, जो साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की है लेकिन रंगमंच पर असफल है। जयशंकर प्रसाद के नाटक इसके अच्छे उदाहरण है। गेटे की सर्वश्रेष्ठ कृति 'फास्ट' के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। वहीं दूसरी ओर ऐसी कृतियाँ भी है जो साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की नहीं कही जाती लेकिन रंगमंच पर उनकी धूम है। क्रिस्ट्री का नाटक 'दि माउसट्रेप' महान् साहित्यिक कृति के रूप में स्वीकृत नहीं है, लेकिन बार-बार इसका सफल प्रदर्शन होता है। पारसी थियेटर के नाटकों के विषय में भी यह कथन सही है।

आखिर इसका क्या कारण है? और ऐसे में नाट्यकृति के मूल्यांकन के लिए आलोचक क्या मानदंड अपनाए? अक्सर यह कहा जाता है कि नाटककार को रंगमंच को ध्यान में रखकर रचना करनी चाहिए लेकिन कई बार ऐसी रचनाएं भी सफल नहीं हो पाती। गोविंद चातक स्वयं एक अच्छे आलोचक हैं, नाटक के रूप, दृश्यबंध, तकनीकी पक्ष के ज्ञाता हैं लेकिन फिर भी उनके नाटक रंगमंच पर सफल नहीं हुए।

1960 के बाद बहुत से आलोचकों ने रंगमंचीय सक्रियता से प्रभावित होकर केवल रंगमंचीय प्रस्तुति को नाट्यालोचना के मानदंड के रूप में शीर्ष पर रखा। जयदेव तनेजा, देवेन्द्रराज अंकुर, गिरीश रस्तोगी आदि ऐसे ही आलोचक हैं जो 'रंगमंचीय तत्त्वों' को ज्यादा तरज़ीह देते हैं। वहीं दूसरी ओर गोविंद चातक आदि साहित्यिक गुणों को ज्यादा महत्त्व देते हैं। सिद्धनाथ कुमार नाटक-नाट्य में भेद करते हुए भी संतुलित दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। लेकिन उनका यह दृष्टिकोण 'नाट्य' के लिए है अर्थात् रंगमंच पर प्रस्तुत आलेख के लिए, नाटक यानि 'पाठ्य नाटक' के लिए नहीं।

बहरहाल, यह सही है कि नाटक रंगमंच पर जाकर सफल और संपूर्ण होता है लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं कि रंगमंच पर सफल प्रत्येक नाटक साहित्यिक भी हो। नाटक एक साहित्यिक विधा है, साहित्य के मूल्यों का नाटक में होना जरूरी है। नाटक की आलोचना का प्रथम बिंदु उसमें निहित साहित्यिक गुणों का मूल्यांकन ही होना चाहिए, बाद में रंगमंचीय संभावनाओं और प्रस्तुति का। इसका मतलब श्रेणीबद्धता करना नहीं है। दोनों का निश्चित अनुपात में होना जरूरी है। नाटक को एक साहित्यिक विधा होना चाहिए जिसमें रंगमंचीय संभावनाएँ हों और जिसे बिना विशेष कठिनाई के प्रस्तुत किया जा सके। नाटककार को रंगमंच के व्याकरण का पूर्ण ज्ञान भले न हो, लेकिन एक आंशिक स्तर तक जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

नाटक के साहित्यिक गुणों की चर्चा करते हुए कथानक, पात्र व चरित्र चित्रण, संवाद व भाषा योजना, रंगमंचीय संभावनाएँ, उद्देश्य आदि तत्त्वों का जिक्र कमोबेश सभी विद्वानों ने किया है। महत्त्व के नाम पर अपने-अपने हिसाब से इन्हीं को आगे-पीछे किया जाता रहा है। अरस्तू जहाँ कथानक को 'त्रासदी की आत्मा' मानते थे, वहीं एब्सर्ड नाटक के पक्षधरों ने 'कथानक विहीनता' को ही नाटक में सर्वप्रमुख बना दिया। कुछ आलोचक जहाँ संवाद-योजना को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते हैं वहीं कुछ भाषा

व पात्रों को। लेकिन एक अध्येता के लिए नाटक के इन सभी पक्षों पर संतुलित दृष्टि से विचार करना आवश्यक है, क्योंकि ये सभी तत्त्व नाटक के स्थापत्य में अलग-अलग ही सही लेकिन अनिवार्य भूमिका अदा करते हैं।

सबसे पहले कथानक की चर्चा की जाती है। कथानक ही वह आधार है जिस पर नाटक टिका होता है। कथानक मात्र कहानी न होकर घटनाओं, कार्य व्यापार का संतुलित संयोजन होता है। नाट्यालोचक सिद्धनाथ कुमार के शब्दों में- "लेखकीय उद्देश्य को अभिव्यक्त करने वाले द्वंद्वयुक्त (द्वंद्वरहित भी हो सकता है) एवं कुतुहलवर्द्धक व्यवस्थित घटनाक्रम और पात्र संयोजन को कथानक कह सकते हैं।"[1]

सिद्धनाथ कुमार कथानक को लेखक और दर्शक को ध्यान में रखकर व्याख्यायित करते हैं। कथानक में नाटक की विषयवस्तु के साथ-साथ कार्यव्यापार और कार्यान्विति का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कार्यव्यापार से तात्पर्य नाटक में हुए 'कार्यों से पड़ा प्रभाव' या बाह्य जीवन व आंतरिक जीवन को उद्वेलित करने वाले कार्य से है। नाटक में कार्यास्थिति से अभिप्राय समय, स्थान व घटना के संयोजन से है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि किस समय व स्थान पर कौन सी घटना घट रही है और नाटक के विकास में उसका क्या योगदान है?

इन्हीं सब बातों के मद्देनज़र स्वदेश दीपक के नाटकों का विवेचन करने का प्रयास किया जाएगा।

स्वदेश दीपक ने पाँच नाटक लिखे हैं। उनके नाटकों में अनेक सवाल और समस्याएँ उजागर हुई हैं। व्यक्ति के अंतर्मन की परतों और निजी समस्याओं की बजाय सामाजिक समस्याओं पर लेखक का ध्यान ज्यादा आकर्षित हुआ है। उनके नाटकों की केन्द्रीय विषयवस्तु धर्म के नाम पर निजी स्वार्थपूर्ति, आम आदमी का निरंतर दूभर होता जीवन, मूलभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति न होना तथा इन सबके लिए जिम्मेदार सत्ता, व्यवस्था, कानून-व्यवस्था आदि का पर्दाफाश करना है। इस भ्रष्ट समाज व्यवस्था तथा स्वार्थी राजनीतिक शक्तियों ने आम आदमी का जीवन मुहाल कर दिया है। इंसानियत, कला, भूख, धर्म, स्वप्न, सच आदि शब्द इन नाटकों में अनिवार्य आवश्यकता बनकर विशेष रूप से पारिभाषित हुए

है तथा बहस की वस्तु बने है। जीने के लिए, व्यवस्था परिवर्तन के लिए संघर्ष करता आदमी किस परिणति पर पहुँचता है, उसके संघर्ष के महत्त्व तथा अनिवार्यता को स्वदेश दीपक ने बखूबी समझा तथा स्थापित किया है।

सत्ता का चरित्र स्वदेश दीपक के नाटकों में प्रमुख रूप से उभर कर सामने आया है। देश की कमजोर केन्द्रीय सत्ता अपनी नीतियों और कार्यवाहियों के कारण नाटककार की आलोचना का कारण बनी है। सत्ता "सर्दी के सबसे भयंकर सूखे और टयूबवैल के स्थान पर टी.वी. ताकि पिलाई जा सके लोगों को धर्म की अफीम। रामायण महाभारत की अफीम..."[2] की राजनीति करती है। सत्ता जो स्वार्थी है, जिसे जनता केवल चुनाव के समय याद आती है। सत्ता जिसने आम आदमी को 'वोट' में तब्दील कर दिया है। सत्ता जो धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करने के बावजूद धर्म के नाम पर वोट मांगती है और धर्म के नाम पर दंगा करवाती है। सत्ता के इसी दमनकारी और दोहरे चरित्र को नाटककार ने अपनी रचनाओं में उजागर करने की कोशिश की है।

दरअसल स्वदेश दीपक के नाटकों में 1980 के बाद की भारतीय राजनीति की उथल-पुथल, सरकार की नीतियाँ, तथाकथित सुधार कार्यक्रम आदि के कारण जनता पर पड़े प्रभाव का विश्लेषण मिलता है। 1980 में इंदिरा गाँधी का गरीबी हटाओं का नारा, 1984 में उनकी हत्या, हत्या के बदले के रूप में सिख विरोधी दंगे, राजीव गाँधी के नसबंदी, जनसंख्या नियंत्रण जैसे सुधार कार्यक्रम, बाद में उनकी भी हत्या, फिर केन्द्रीय सत्ता में बिखराव, गठबंधन की राजनीति, मंडल आयोग की स्थापना, जाति-धर्म के नाम पर वोट में परिवर्तित होता आम आदमी, आर्थिक नीतियाँ आदि के कारण जो प्रभाव आम जनता पर पड़ा; इन नाटकों के चरित्र अपने संवादों, बातचीत, कार्यों में उसका वर्णन करते हैं तथा उसकी आलोचना करते हैं। वे इन नीतियों से पीड़ित है तथा कुछ चरित्र सत्ता के प्रतीक भी है। कैसे नेता अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए भिखारियों के पास जाकर उन्हें पक्के मकान का लालच देते हैं, नेता आजकल 'पैसे वाले भिखारी' हैं जो लालच देकर भिखारियों से वोट मांगते है। 'जलता हुआ रथ' नाटक में दृश्य तीन में नेता कहता है-

"नेता : झंडा जी। पिछली बार आप लोगों ने हमारी पार्टी को वोट नहीं दिया अच्छा किया। पता चल गया देश की जनता को कि जनता पार्टी जनता की है ही नहीं। कैसे बन सकती थी

भारत भाग्य विधाता। हमने बाहर रहकर साथ दिया। लेकिन एक साल में दो प्रधानमंत्री। दूसरे बेचारे की हसरत दिल में ही रह गई लाल किले पर झंडा लहराने की। हो। विरोधी पार्टी हो। लेकिन पहले एकता तो कर ले आपस में। बिन ड्राइवर का इंजन रेल को पटरी से तो उतरना ही था।

झंडा : ठीक कहा जी। लेकिन सरकार कौन-सी भी आए, हमें क्या? हमने तो भीख ही मांगनी है।"[3]

यहाँ नेता के कथन में तत्कालीन राजनीति की 'गठबंधन नुमा संरचना', आपस का 'मेल-जोल' और कमजोर सरकार का स्पष्ट वर्णन है। झंडा जो एक भिखारी है वह जानता है कि सरकार कोई भी आए उसे भीख ही मांगनी हैं। आगे नेता मकान का लालच देकर, 'फूट डालो राज करों' वाली नीति अपनाकार झंडा को अपनी तरफ कर लेता है और भिखारियों के आशियाने को उजाड़ करवा देता है। नेता को भिखारियों के मकान से कोई मतलब नहीं है वे उस जगह होटल बनवाना चाहते हैं। भिखारी वृत्ति को कानूनी जुर्म बनवाकर सबको जेल में ड़लवा देते हैं। नेता के कारिंदे मुन्ना को देखकर 'लघु उद्योग फैक्ट्री' लगवाने की बात कहते हैं और बैठे-बैठे कमाई का लालच देते है। दरअसल उनका असल मकसद जवान अंधी मुन्ना से वेश्वावृत्ति करवाकर पैसे कमाने का है यहीं उनकी 'लघु उद्योग फैक्ट्री' की 'बैठे-बैठे कमाई' है। सत्ता, नेता का यहीं असल चरित्र है। उन्हें केवल वोट से मतलब है, उनकी देश प्रेम, एकता की सारी बातें घुमा-फिराकर इसी 'वोट' पर आती है।

भ्रष्टाचार में ये नेता इतने लिपटे हुए है कि जीतने के बाद इन्हें ऐसा महकमा चाहिए जिसमें इनकी मोटी कमाई हो सके अर्थात् ज्यादा से ज्यादा रिश्वत लेने-देने व भ्रष्टाचार की ज्यादा गुंजाइश हो। 'बाल-भगवान' में नेता को जीत भी मिली, मंत्री भी बने लेकिन उन्हें जो महकमा मिला उसमें वे खुश नहीं। वे 'बाल-भगवान' से आशीर्वाद लेने तथा से पूछने आए है कि किस पार्टी की सरकार बनेगी जिससे उन्हें ज्यादा से ज्यादा फायदा हो सके। मंत्री और मास्टर के संवाद उनके चरित्र को बखूबी बयान करते हैं-

"मास्टर : आपने तो दोनों बार चुनाव जीता, मंत्री भी बने। इस बार भी विजय निश्चित है।

मंत्री : हाँ। मंत्री तो बना दोनों बार लेकिन शिक्षा विभाग जैसे रूखे-सूखे महकमे का। विरोधी दल के एम.एल.ए. मैं तोड़ू, दल बदलने की व्यूह रचना मैं करूँ, और हर बार मुझे दिया जाए बाँझ विभाग! इतना अन्याय।"[4]

शिक्षा विभाग एक रूखा-सूखा विभाग मंत्री को लगता है क्योंकि इसमें भ्रष्टाचार की गुंजाइश कम है। मंत्रियों को केवल वोट मांगने, जीत के बाद पैसे कमाने से मतलब है। इसके लिए वे दल बदलने की राजनीति करते रहते है। उन्हें जनता की परेशानियों से कोई मतलब नहीं है।

सत्ता का चरित्र स्वदेश दीपक के नाटकों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। सत्ता यहाँ सीधे-सीधे नेताओं के रूप में, अप्रत्यक्ष रूप से पीड़ित चरित्रों के रूप में, बुद्धिजीवियों के संवादों व बातचीत, टीका-टिप्पणियों के रूप में आई है। 'गरीबी हटाओ' का नारा देने वाली सरकार से लोग इतने आतायित हैं कि गरीबी का नाम लेना ही जुर्म हो गया है। बाल-भगवान में पंडिताइन के गुरबत के बारे में पंडित को कहने पर वह कहता है- "की न फिर बेवकूफों वाली बात। हट गई गरीबी देश से। हमने वह सरकार चुन ली जो काम करती है। भूले से भी गरीबी की बात मत करना, सरकार अंदर कर देगी, अंदर। अब हम हरामजादे चाँद पर रहंगे चाँद पर।"[5]

सत्ता के कुछ लोगों ने भारत को 'खानदानी भारत' बना दिया है। नाटककार की शिकायत वैसे तो सत्ता के सभी रूपों तथा पार्टियों से है लेकिन मुख्य रूप से 'कांग्रेस पार्टी' आलोचना का मुख्य बिंदु है। कांग्रेस पार्टी का सीधे-सीधे नाम लेकर भी लेखक टिप्पणी करता है। कहीं अप्रत्यक्ष रूप में उसकी आलोचना करता है। 'खानदानी भारत' कहने से आशय कांग्रेस पार्टी की खानदानी राजनीति से है जिसमें राजाओं की तरह उत्तराधिकारी के रूप में एक के बाद एक ही परिवार के लोग सत्ता के सर्वोच्च पद पर आसीन होते रहें। 'भेष बदल कर वोटों का मोल भाव करना' ये लोग खूब जानते हैं। 'जलता हुआ रथ' नाटक में बाबा नामक अधेड़ व्यक्ति जो अंग्रेजी में बातें करता है, अर्द्धविक्षिप्त की तरह बोलता है, वह सत्ता द्वारा सताया गया एक आम पढ़ा लिखा व्यक्ति है जिसके जवान बेटे की दंगों में हत्या हो गयी और जिसके कारण उसकी ऐसी हालत हो गई कि समझदार, शिक्षित होने पर भी वह पागल करार दे दिया जाता है।

स्वदेश दीपक अम्बाला में रहते थे। 1984 में इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद हुए सिख विरोधी दंगों का असर दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों के साथ पंजाब और हरियाणा पर भी हुआ। दंगों

में पीड़ित व्यक्तियों में एक चरित्र को स्वदेश दीपक ने जलता हुआ रथ के 'बाबा' के रूप में व्याख्यायित करने की कोशिश की है जो सरकार की आलोचना करता है तथा सशस्त्र क्रांति में भागीदार न होने पर भी उसी का समर्थन करता नज़र आता है।

बहरहाल, सत्ता का यह चरित्र उसकी कानून-व्यवस्था में भी झलकता है। कानून-व्यवस्था जिस पर एक देश की आधारशिला टिकी होती है, अगर वहीं नेताओं के हाथ की कठपुतली बन जाए तो आम जनता का क्या हाल होगा? कानून व्यवस्था के प्रतीक 'पुलिस' का चरित्र भी यहाँ दमनकारी है। पुलिस अपने अधिकारों का गलत इस्तेमाल करती है। 'सबसे उदास कविता' में डी.एस.पी. अहूजा जमींदार से रिश्वत लेकर उसकी चापलूसी करता है तथा बेकसूर 20 औरतों को निवस्त्र बाजार में घुमाता है। यह सब वह जमींदार के बेटे की हत्या का बदला लेने स्वरूप करता है। 'पुलिस' ही जब यह करेगी तो जनता जमींदार द्वारा किए गए अत्याचारों की शिकायत किसे करेगी? आज के इस युग में जमींदार पुलिस, नेता, जज आदि सभी स्वार्थी है जो अपने स्वार्थ के लिए आम जनता पर अत्याचार करते हैं। पुलिस और सरकार का यही रूप अपूर्वा के वाक्य में व्यक्त हुआ है-

"अपूर्वा : हाँ सफेद कोट। बहुत डरते हैं इस देश में लोग वर्दी से। एक पुलिस वाला दसियों आदमियों को थप्पड़, जूतों और लाठी से पीट डालता है। और चुपचाप खड़े रहते हैं लोग। विरोध बहुत बढ़ जाए तो सरकार फौज को घुमा देती है सड़कों पर। फ्लैग मार्च। नहीं डरते लोग आदमी से। दहशत है तो सत्ता और सरकार की प्रतीक वर्दी से।"[6]

पुलिस, न्याय व्यवस्था का पालन करने की बजाय लोगों पर अत्याचार करती है। उन्हें मारती है, जेल में डालकर स्त्रियों से बलात्कार करती है। पुलिस की भाषा के बारे में अपूर्वा कहती है- "आप लोगों के पास डंडे की भाषा है, बलात्कार की भाषा है, अत्याचार की भाषा है और झूठी मुठभेड़ की अंतिम भाषा भी है।"[7] पुलिस बातचीत करने के लिए यहीं भाषाएँ अपनाती है।

'जब पुलिस किसी का रिमांड ले तो सबूत अपने आप चलकर आना शुरू हो जाते हैं। सबूत भी और गवाह भी।'[8] झूठे गवाह बुलाकर पुलिस किसी का भी रिमांड ले लेती है। ऐसी पुलिस होने पर कानून व्यवस्था कैसे होगी इसका अंदाजा स्वयं लगाया जा सकता है। जिस न्यायव्यवस्था के जज भी

रिश्वतखोर हो उसका क्या अंजाम होगा? उस क्षेत्र का उसके लोगों का क्या हश्र होगा? यहीं मुद्दा 'सबसे उदास कविता' में उभारा गया है। अपूर्वा नाम जनरलिस्ट जो नक्सलाइट मूवमेंट से भी जुड़ी है, रिश्वतखोर जज की हत्या कर देती है क्योंकि कानून के नाम पर जज ने कोई न्याय नहीं किया। आम जनता की भलाई की बजाय पर्यावरण पर लेक्चर देने तथा रिश्वत लेने का काम ही किया। जिस न्याय व्यवस्था का जज ऐसा होगा, पुलिस ऐसी होगी, वह व्यवस्था चरमरा जाएगी। उसके खिलाफ विद्रोह जरूर होगा। इसी विचार को स्वदेश दीपक अपने नाटकों में सामने रखते हैं।

सत्ता और कानून-व्यवस्था के इस मायाजाल में सब कुछ स्वार्थ पर टिका है। धर्म, जाति, राजनीति, कला सब स्वार्थ के मोल पर तोले जाते हैं तथा स्वार्थसिद्धि के लिए उनका मनमाना इस्तेमाल होता है। 1992 में बाबरी मस्जिद कांड, 1984 के बाद सिख विरोधी दंगों ने 'धर्म की राजनीति' की ओर सत्तासीन लोगों का रूख मोड़ दिया। 'धर्म' क्या है? इसकी क्या भूमिका होनी चाहिए? इसका क्या इस्तेमाल लोगों और सत्तारूढ़ व्यक्तियों ने किया? इसका वर्णन तथा संबंधित विचार 'बाल-भगवान' नाटक में प्रस्तुत हुए हैं। नाटककार स्वार्थ के नाम पर बलि चढ़ जाने वाले ब्राह्मण बालक के माध्यम से धार्मिक अंधविश्वास, स्वार्थपरता आदि की पोल खोलता नज़र आता है।

'बाल-भगवान' में मास्टर, पंडित, रतनचौधरी, जगत ढ़ाबे वाला, सभी अपने-अपने मतलब के कारण संयोगवश कार्य हो जाने पर एक अर्द्धविक्षिप्त बालक को 'भगवान' बना देते हैं। मास्टर जो शिक्षा की प्रतिमूर्ति है वह भी विवेकशील होने की बजाए 'लोगों को पिलाते रहते हैं धर्म की अफीम ताकि नशेड़ी न होश में आएँ और न अपने हक मांगे।'[9] इस नाटक में मास्टर ही बालक को 'भगवान' घोषित करता है और वहीं उसका प्रचार-प्रसार करता है। लेखक यहाँ भी सत्ता के चरित्र को इस धार्मिक अंधता का कारण बताता है। मास्टर कहता है- "देखो भाई! धर्म के नाम पर प्रत्येक हिंदुस्तानी डरपोक है! आप लोग आम आदमी के विश्वास की बात करते हो। जिस देश के नेता, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक ब्रह्मचारियों, सदाचारियों और तांत्रिकों के चेले हो, उस देश के आम आदमी अगर धर्म की शरण में चले गए तो कौन सा आसमान टूट पड़ा।"[10]

यहाँ मास्टर आम आदमी के अंधविश्वास के लिए सत्तारूढ़ व्यक्तियों को भी दोषी मानता है। हालांकि पूरे नाटक में मास्टर का कोई स्वार्थ प्रत्यक्षत: नज़र नहीं आता वह बार-बार सिद्धड़ में

बाल-भगवान के वास के प्रति निष्ठा व्यक्त करता है, लेकिन उसके तर्कों और उपदेशों के कारण ही बालक सिद्धड़ की मृत्यु हो जाती है। वहीं इस नाटक में सारे फसाद की जड़ नज़र आता है जिसके कारण सभी अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

1989 में मंडल आयोग के गठन ने धर्म की जगह 'जाति' को मुख्य मुद्दा बना दिया। जातिगत भेदभाव इस देश में सदियों से चलता आ रहा है। मंडल आयोग ने दलितों को आरक्षण देकर उन्हें आगे आने का अवसर प्रदान करने का सुझाव दिया। लेकिन तथाकथित सवर्ण समाज, 'रूलिंग क्लास' को यह बात पची नहीं। वे सदैव दलितों के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाते रहे। इसी सवर्ण मानसिकता का शिकार सवार रामचंदर है। 'कोर्ट मार्शल' नाटक में स्वदेश दीपक ने इसी विचार को सामने रखा है। अपनी ड्यूटी का पक्का, ईमानदार, स्वाभिमानी रामचंदर, बी.डी. कपूर नामक उच्च अधिकारी को गाली खाने से इंकार कर देता है। उसके अत्याचारों से तंग आकर अंततः उसकी हत्या करने का प्रयास करता है। जाति के नाम पर बी.डी. कपूर उसे चूड़हा, भंगी, हराम की सट्ट जैसी गंदी गालियाँ देता है, उससे बच्चे की टट्टी साफ करवाता है। तथाकथित 'खानदानी' कपूर अपनी पत्नी पर जुर्म करता है, शराब पीता है, सरकारी राशन बेचता है और अपने आप को 'खानदानी' और 'रूलिंग क्लास' का मानता है। सेना जिसमें सैनिक बराबरी का व्यवहार करने के लिए जाने जाते हैं। लड़ते समय कोई किसी जाति का न होकर देशप्रेम और एकता की बातों का हवाला देते हैं, उसी विभाग में जाति के नाम पर एक अफसर अपने सैनिक को गाली देता है, उसे बेवजह परेशान करता है। 'कोर्ट मार्शल' नाटक में एक-एक करके सभी अफसरों की पोल वकील बिकास राय खोलता है और सभी को सच का सामना करने पर मजबूर कर देता है। बिकास राय इस जाति व्यवस्था, समाज के तंत्र पर कुठाराघात करते हुए कहता है-

"हम एक ऐसे समाज में रहते हैं जो कानून और व्यवस्था पर टिका है और समाज में एक व्यक्ति के विरोध और विद्रोह के लिए कोई स्थान नहीं...। शक्तिशाली लोगों के विरोध को राजनैतिक विरोध कहा जाता है, जो उन्हें एक छलांग में बिठा देता है, सत्ता के बिल्कुल पास रखी कुर्सी पर और कमजोर लोगों का विरोध, इसे विरोध नहीं, विद्रोह का नाम दिया जाता है, जो उन्हें एक ही छलाँग में पहुँचा देता है, फाँसी के तख्ते तक।... कानून और संविधान ने सबको बराबर का दर्जा दिया है लेकिन बड़े आदमी ने छोटे आदमी को, ऊँचे आदमी ने नीचे आदमी को यह अधिकार नहीं दिया।... बराबर की

बात तो दूर, सोचने के स्तर पर भी हम अपने से 'छोटों' को बराबर का अधिकार देने के लिए तैयार नहीं। बराबर का अधिकार। हम तो आँख उठाकर अपनी ओर देखने का हक तक देने को तैयार नहीं। इसका कारण! वे सामंती प्रवृत्तियाँ, सोचने का सामंती तरीका, फ्यूडल टैन्डेनसीज जिनसे हमें अभी तक आजादी नहीं मिली।"[11]

इसी सामंती प्रवृत्ति, सामंती सोच के प्रति विद्रोह और इसका विरोध स्वदेश दीपक के नाटकों में सर्वत्र विद्यमान है। इस विरोध का तरीका चाहे जो भी है, चाहे वह असफल हो या सफल, नैतिक या अनैतिक, लेकिन संघर्ष के स्वर सभी जगह हैं जरूर।

तथाकथित 'रूलिंग क्लास' की यह भ्रष्ट और सामंती स्वार्थी सोच सर्वत्र मौजूद है। यह सोच नेता रूप में आदमी को केवल 'वोट', उच्च वर्ग के रूप में आदमी को केवल एक 'जाति' बना देती है। पढ़े लिखे बुद्धिजीवी भी इसी में शामिल है। डॉक्टर, अधिकारी, पुलिस, अफसर, जज कोई ऐसा नहीं है जो इससे बाहर हो। 'बाल-भगवान' नाटक में डॉक्टर को अपने रोगी से ज्यादा चुनाव की चिंता है, वह सिद्धड़ को अल्सर होने पर तुरंत ऑपरेशन की बजाय चुनाव बाद करने की सलाह दे देता है। ऐसे ही 'कोर्ट मार्शल' का डॉक्टर गुप्ता, बी.डी. कपूर के कहने पर जवान रामचंदर को जाँचता नहीं जिसके कारण रामचंदर को टाइफाइड़ हो जाता है। डॉक्टरों का ही नहीं अफसरों का भी यहीं हाल है। 'काल कोठरी' नाटक में इंटरव्यू लेने आए किशोर चंद शर्मा कला और सौंदर्य के नाम के अभिजात्यता को प्रमुख मानकर 'भूख' 'जरूरत' की बजाय नकली सौंदर्य, दैहिक आकर्षण को महत्त्व देकर वसुन्धरा को नौकरी दे देते हैं जबकि अभिनेता रजत का अपमान करते हैं।

कला, सौंदर्य क्या है? इस पर भी स्वदेश दीपक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं को महत्त्व देते हैं। बाबा (जलता हुआ रथ) की नज़र में सौंदर्य "दोपहर को आसमान में उड़ते पपीहे की पीपी.... और आम के पेड़ पर बैठी कोयल की कूं-कूं की जुगलबंदी में, रोटी सेंकती माँ में, दूध पीते बच्चे की सांस में है।"[12]

कलाकार की कठिनाइयों और राज्य तथा कलाकार के रिश्ते का विश्लेषण 'काल कोठरी' नाटक में हुआ है। राज्य के पुरस्कारों आदि ने कला को केवल कुछ लोगों के हाथों सौंप दिया है जो कला को बाजार बनाने, अंतर्राष्ट्रीय बनाने के सिवा उसके मूलभूत तत्त्वों को जानते तक नहीं और न जानना चाहते।

'कालिदास' और 'हानूश' का जो हश्र पुरस्कार मिलने के बाद हुआ था वह 'काल कोठरी' के अभिनेता रजत का बिना पुरस्कार मिले है। वह भूखे मरने पर मजबूर है।

स्वदेश दीपक के नाटकों की केन्द्रीय विषयवस्तु इस भ्रष्ट समाज व्यवस्था और सत्ता के चरित्र का पर्दाफाश करना है जिसमें आदमी और उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की कोई जगह नहीं है। इस व्यवस्था में इंसान या तो सिद्धड़ की तरह मार दिया जाता है या बाबा (जलता हुआ रथ) की तरह अर्द्धविक्षिप्त हो जाता है। सहन न कर पाने की स्थिति में स्वदेश दीपक सशस्त्र क्रांति का रास्ता सुझाते नज़र आते है। रामचंदर (कोर्ट मार्शल) अधिकारियों की हत्या करके अपने अत्याचारों का बदला लेता है, वहीं अपूर्वा (सबसे उदास कविता) नक्सली आंदोलन से जुड़कर जज की हत्या कर देती है। लेकिन इन दोनों की परिणति फांसी की सजा होती है जो इस झूठी कानून व्यवस्था का प्रतीक बन जाती है।

स्वदेश दीपक एक समस्या अपने नाटकों में उठाते है और उसी के बहाने अन्य मुद्दों पर प्रकाश डालते जाते है। 'कहानी' के नाम पर 'जलता हुआ रथ' में कोई विशेष कथावस्तु नहीं है। इन नाटकों में कथावस्तु एक कहानीनुमा संरचना न होकर विभिन्न समस्याओं को सुलझाती और किसी परिणति की ओर बढ़ती नज़र आती है। विषयवस्तु में आरंभ, विकास, अंत या 'चरम' की स्थितियाँ मौजूद है। किसी एक निश्चित अंत की बजाय सभी नाटक एक सवाल पर आकर रूक जाते हैं और दर्शकों को सोचने पर मजबूर करते हैं कि क्या यह सही हुआ? क्या ऐसा होना चाहिए था? स्वदेश दीपक के नाटकों की कथावस्तु की यही विशेषता है और कभी-कभी यही कमी भी बन जाती है। 'जलता हुआ रथ' नाटक मुन्ना की मृत्यु पर क्रांति के आह्वाहन पर समाप्त होता है, 'कोर्ट मार्शल' रामचंदर की फांसी की सजा पर, 'सबसे उदास कविता' अपूर्वा की फांसी पर, 'बाल-भगवान' सिद्धड़ की मृत्यु पर, 'काल-कोठरी' रजत के नाटक करने पर। 'काल कोठरी' सबसे अंतिम नाटक है जिसमें लेखक आदर्शों पर बल देते हुए आशान्वित होने का संकेत देकर एक विडंबना पर नाटक को समाप्त कर देता है। सशस्त्र क्रांति का रास्ता यहाँ आकर इसी व्यवस्था में इसी तरह जीवन जीने की विडंबना पर आकर रूका हआ नज़र आने लगता है।

इस प्रकार इन नाटकों की कथावस्तु समाज की कई परतों को खोलती नज़र आती है। लेकिन नाटक में कथावस्तु का सशक्त होना ही उसकी सार्थकता का द्योतक नहीं है। कथावस्तु के साथ-साथ कार्यव्यापार और कार्यान्विति बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

कार्यव्यापार को व्याख्यायित करते हुए सिद्धनाथ कुमार लिखते हैं "किसी कार्यव्यापार से बाह्य जीवन का भी संतुलन भंग होता है, आंतरिक जीवन का भी। इससे बाहरी जीवन में भी सक्रियता आती है, अंतर्जीवन भी आंदोलित होता है।"[13]

कार्यव्यापार का महत्त्व असंदिग्ध है। नाटक में यह देखना जरूरी है कि कार्यव्यापार किस तरह का है, उससे पात्रों, घटनाओं पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। पात्र के कार्य स्वयं घटनाओं से उपजे है या लेखकीय निर्देशानुसार ही हो रहे हैं।

इस दृष्टि से 'कोर्ट मार्शल' एक सशक्त रचना है। 'कोर्ट मार्शल' का कोई भी कार्यव्यापार थोपा हुआ नहीं लगता। रामचंदर का पूरे 'कोर्ट मार्शल' के दौरान चुप रहना बेहद प्रभावित करता है। 'चुप रहना' भी नाटक में एक क्रिया होती है। मौन भी एक सार्थकता होती है वह भी अभिव्यंजना है। बिकास राय द्वारा शुरू में अपने पक्ष में बोले जाने पर रामचंदर केवल 'सर-सर' कह कर बैठ जाता है। वहां उसका कुछ न बोल पाना स्थिति की विडंबना को और अधिक गहरा कर देता है। यह दर्शकों में उत्सुकता तो पैदा करता ही है, साथ-साथ रामचंदर की स्थिति की गंभीरता को भी दर्शाता है। 'कोर्ट मार्शल' के सारे कार्य परस्पर गुंफित होते हुए एक के बाद एक बड़ी कुशलता से नाटक को परिणति पर पहुँचाते हैं तथा उसकी नाटकीयता को बढ़ाते है। 'काल कोठरी' भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इंटरव्यू के समय रज़त का चुप रहना तथा बाद मैं अधिकारी का गला पकड़कर उसे स्थिति से अवगत कराना प्रभावित करता है यह रज़त की आंतरिक भावनाओं को उज़ागर तो करता ही है साथ ही स्थिति से उपजा एकदम स्वाभाविक कार्य लगता है। हालांकि एक अभिनेता का बेवजह बहस करना, लेखक की बीवी का रोना, अंगद का लेखक की बीवी को सहारा देना आदि कार्य अनावश्यक और अतिनाटकीय हो गए है।

'नाटक बाल भगवान' में भी ऐसे कई प्रसंग हैं जो कार्य व्यापार की दृष्टि से एकदम शिथिल हैं जो किसी भी प्रकार नाटक में बदलाव नहीं करते बल्कि उसे निष्क्रिय ही बनाते है। प्रभात का क्रांति पर बहस करना, पहलवान और ढाबे वाले की बातें, गाँव की पुजारिन की दार्शनिक बातें आदि। ऐसे कार्य नाटक से निकाल भी दिए जाए तो नाटक पर कोई फर्क नहीं पड़ता है।

कार्यव्यापार संवेग जागृत करने वाले तथा अनेक शिराओं की अंतर्गुंफित रचना की तरह होने चाहिए।

जहाँ तक कार्यान्विति का प्रश्न है, घटना, समय, स्थान का संयोजन ही कार्यान्विति है। किस समय पर किस स्थान पर कौन सी घटना हो रही है यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'जलता हुआ रथ' नाटक इस दृष्टि से कमजोर रचना प्रतीत होती है। इस नाटक की कुछ स्थितियाँ ही प्रभावित करती है समग्र नाटक नहीं। पिता पुत्र की बहस, पुलिस वाले के कार्य इस दृष्टि से सही प्रतीत नहीं होते। 'सबसे उदास कविता' में इस परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण हैं किस समय क्या बोलना है, कैसे बोलना है यह अपूर्वा बहुत बेहतर तरीके से जानती है। स्थिति विशेष में डॉक्टर का चिंतित होना, जज का अपूर्वा के प्रति व्यवहार आदि सभी समय व स्थानानुसार उचित जान पड़ते है। 'काल कोठरी' ने भी रज़त की बीवी का चिल्लाना, उसके पिता के संवाद, बहन की झल्लाहट आदि कार्य कहीं भी समयानुसार अनुचित नहीं लगता।

सभी नाटकों में घटनाएँ 2-3 दिन से ज्यादा की नहीं है। 'सबसे उदास कविता' में कुछ दिन की घटनाएँ है। छोटी-छोटी उपकथाओं से मुख्य कथा का विकास होता है। कोर्ट मार्शल, सबसे उदास कविता, काल कोठरी में उपकथा मुख्य कथा का संयोजन मुख्य नदी और सहायक नदी जैसा है, जो अंतत: एक साथ आकर मिल जाती है जबकि बाल भगवान और जलता हुआ रथ में उपकथाएं थोड़ी बिखरी हुई नज़र आती है।

नाटक की संरचना का दूसरा मुख्य पहलू उसके पात्र अथवा चरित्र होते हैं। कथावस्तु, घटनाएँ, स्थितियाँ आदि चरित्रों द्वारा ही संचालित और नियमित होती है। किसी स्थान पर किसी स्थिति में कोई पात्र किस तरह की हरकत करता है, उसकी क्या गति है, उसका चरित्र कैसा है? उसका आचरण, कार्य व्यापार कैसे हैं; इन्हीं सब का वर्णन चरित्र-चित्रण में शामिल होता है। गोविन्द चातक के अनुसार- "नाटक का मूल आधार ही चरित्र और स्थिति का संघर्ष है।"[14]

विभिन्न स्थितियों में पात्रों का विभिन्न प्रकार का आचरण उनके चरित्र को बयान करता है। स्थितियाँ और पात्र दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। बहरहाल, चरित्र-चित्रण नाटक का अनिवार्य अंग है। नाटककार किस तरह का चरित्र विकसित करता है, यह उसकी सोच को दर्शाता है। परंतु कई बार चरित्र लेखक के हाथ से छूटकर स्वतंत्र कार्य भी करने लगते है ऐसा स्थितियों तथा मानव-मन के द्वंद्व के कारण होता है। आचार्य भरत के काल में नाटक के चरित्र पहले से निर्धारित होते थे- नायक, जिसकी कई कोटियाँ थी। खलनायक, नायिका, विदूषक आदि। लेकिन आधुनिक काल में नायक की

परिभाषाएँ बदल गई। अब नायक का राजा या कोई दैवीय पुरुष होना अनिवार्य नहीं था, कोई भी व्यक्ति नायक बन सकता था। एब्सर्ड नाटकों में तो नायक की जगह स्थितियाँ महत्त्वपूर्ण हो गई। अब कोई नायक या मुख्य चरित्र नहीं रहा। नाटक का नायकविहीन होना या उसमें मुख्य चरित्र का न होना, आम आदमी को प्रतिष्ठित करता है कि वह भी विषय बन सकता है। दरअसल यह इस विचार पर टिका है कि 'चरित्र' आखिर मानव की ही प्रतिकृति हैं। उनमें मानवीय गुणों का होना लाजिमी है। "भूख प्यास, घृणा-प्रेम, आकर्षण-विकर्षण, राग-विराग, सर्जन-संहार, प्रदर्शन-गोपन आदि ऐसी सहज प्रवृत्तियाँ हैं जो मानव चरित्र का अंग होती है।"[15] अत: आज चरित्र का महान्, शूरवीर सर्वसम्पन्न गुणों वाला होना उसे अति मानवीय प्रवृत्तियों वाला ही सिद्ध करेंगे, एक सफल चरित्र वह नहीं बन पाएगा। अत: नाटक में चरित्र-चित्रण को विश्लेषित करने का तात्पर्य यहीं है कि विभिन्न स्थितियों में पात्र का कार्य व्यापार क्या हैं? उसकी गति क्या है? और उसका विकास लेखक ने कहाँ तक किया है।

स्वदेश दीपक के नाटकों में कई तरह के चरित्र सामने आते हैं। 'बाल-भगवान' नाटक में शीर्षक और स्थितियों के मूलाधार के रूप में 'सिद्धड़' को मुख्य पात्र माना जा सकता है। सिद्धड़ जोकि अर्द्धविक्षिप्त भूखा ब्राह्मण बालक था, कूड़े के ढेर पर मुँह मारता था, उसे लोगों ने भगवान बनाकर उसे पूजनीय बना दिया। अब उसकी मुश्किले और बढ़ गई। सारा दिन घर में रहने से सिद्धड़ को अल्सर हो जाता है और अंतत: पंडित द्वारा लात मारने पर वह मर जाता है। सारी कथावस्तु सिद्धड़ के इर्द-गिर्द ही घूमती है। सिद्धड़ चूंकि बालक है, ना समझ है इसलिए नाटककार ने उसे गुब्बारे, बैट आदि से खेलने की इच्छा जाहिर करके उसके चरित्र को संपूर्ण बनाया है। सिद्धड़ का चरित्र दर्शकों में करुणा उत्पन्न करता है। उसकी अंतिम परिणति भी स्वाभाविक होती है। पूरे नाटक में सिद्धड़ अपने चरित्र के कारण प्रभाव उत्पन्न करता है।

स्वदेश दीपक के नाटकों के लगभग सारे चरित्र मानवीय प्रवृत्तियों से युक्त है। वे कहीं भी नकली या बनावटी नहीं लगते। 'बाल भगवान' में पंडित जो धूर्त, शराबी, स्वार्थी है वह भी एक पिता तथा मुनष्य भी है। आत्मविश्लेषण करके वह अपने आप को कोसता है तथा कुछ दिन शराब भी छोड़ देता है। उसका आत्मविश्लेषण उसे एक भावुक, मानवीय, शोकग्रस्त, मजबूर इंसान और पिता सिद्ध करता है। वह कहता है- "मेरी भूख। मेरी भेड़िया भूख! पेट भर जाने पर भी खत्म न होने वाली भेड़िया

भूख! मैं एक बाप, अपने बेटे की कमाई पर ऐश करता बाप! अपने बेटे को बेचता हुआ बाप! उस बाप से नीच बाप कौन होगा जो अपने बेटे को नीलाम कर दे, एक घर बनवाने के लिए.... मैं जीता-जागता आदमी एक प्रेत में बदल गया हूँ! अपने बेटे का चटखारे लेकर लहू चाटता प्रेत!"[16]

पंडित यह जानता है कि वह गलत काम कर रहा है। वह यह भी जानता है कि किसी भी प्रकार से यह कार्य उचित नहीं है। सिद्धड़ के कहने पर ईंट लाकर देता है, बैट देने के लिए भी कहता है। एक क्रोधी, स्वार्थी, धूर्त पंडित संवेदनशील पिता भी है। पक्की ईंटों वाले मकान और राजधानी में चमचमाती कोठी के चक्कर में यहीं पंडित अपने ही बेटे को मार देता है। पंडित के चरित्र का यह अंतर्द्वन्द्व उसे एक मानवीय चरित्र साबित करता है। 'बाल भगवान' में आए सभी पात्र अपने-अपने चरित्र को बयान करते हैं। 'मास्टर' का चरित्र थोड़ा अटपटा सा लगता है उसकी सारी बातें, सारे भाषण कभी उसे एक धर्म के पुरोधा साबित करते हैं जो अतिविश्वासी है, कभी उसे स्वार्थी सिद्ध करते हैं जो अपने (?) स्वार्थ के लिए सिद्धड़ को भूखा रखने की बात कहता है। मास्टर का निजी स्वार्थ कहीं नहीं झलकता। अपने मानसिक स्वार्थ की पूर्ति, अपने भाषणों और सिद्धांतों की गवाही रूप में या उन्हें सच साबित करने के लिए उसने सिद्धड़ को 'बाल भगवान' बनाया, ऐसा प्रतीत होता है। रतन चौधरी भी सिद्धड़ को केवल अपने स्वार्थ के लिए भगवान बनाता है, उसके खाने-पीने का ध्यान रखता है, उसका असल चरित्र तब पता चलता है जब वह 'चुनाव' के कारण सिद्धड़ का ऑपरेशन बाद में कराने की बात कहता है। डॉक्टर भी इसी स्वार्थ में शामिल है। पंडिताइन का चरित्र एक चिंताकुल माँ के मन को दर्शाता है। उसे भी पक्का मकान लेना है लेकिन बेटे के स्वास्थ्य के एवज में नहीं।

'नाटक बाल भगवान' में सारे चरित्र कथावस्तु का विकास करते हुए अपना स्वतंत्र रूप स्पष्ट करते हैं लेकिन प्रभात नामक युवक का चरित्र बेवजह ठूंसा हुआ लगता है। वह धर्म और नीति के बारे में मास्टर के बहस करता है। इस चरित्र को हटा देने से भी नाटक की मूल संवेदना में कोई खास अंतर नहीं आता। सिद्धड़ का चरित्र सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला चरित्र है। वह पूरे नाटक में बहुत कम बोलते हुए भी अपने क्रियाकलापों और स्वार्थपूर्ति का जरिया बन जाने की मजबूरी के कारण प्रभावित करता है। एक अनजान, निरीह अबोध बालक के रूप में सिद्धड़ संवेदना जागृत करता है।

सिद्धड़ जैसा तो नहीं लेकिन कुछ मामलों में सिद्धड़ की तरह ही रामचंदर (कोर्ट मार्शल) का भी चरित्र है। रामचंदर सेना में सवार है। दलित जाति का होने के कारण तथाकथित ऊँची जाति का

अफसर बी.डी. कपूर उसे गालियाँ देता है, उससे टट्टी साफ करवाने जैसे काम कराता है। चुपचाप बहुत बार यह सब सहन करने के बाद एक दिन रामचंदर, बी.डी. कपूर पर जानलेवा हमला कर देता है। रामचंदर पूरे नाटक में कुछ नहीं बोलता। एक बार बस उसकी गवाही के दौरान वह बहुत थोड़े शब्दों में अपनी व्यथा व्यक्त करता है। अन्य पात्रों के माध्यम से ही उसके चरित्र का खुलासा होता है। रामचंदर का चरित्र एक ईमानदार, अपनी ड्यूटी के पक्के, स्वाभिमानी जवान का उदाहरण पेश करता है। सामान्यत: फौजियों या किसी अन्य सरकारी महकमे में अफसर पर जानलेवा हमला कर देना, उनका कहा काम करने से इन्कार कर देना, कसी दलित समुदाय के व्यक्ति के लिए आसान नहीं है। दलित साहित्य में भी उस समय तक रामचंदर जैसा चरित्र नहीं आया होगा। 'सुनो सेफाली' (कुसुम कुमार) नाटक में सेफाली का चरित्र इसी तरह का है। वह अन्याय का विरोध करते हुए मंत्री के बेटे से शादी से इन्कार कर देती है। लेकिन रामचंदर जैसा स्वाभिमानी चरित्र खड़ा करना महत्त्वपूर्ण है। हालांकि 'पूर्ण चरित्र' या 'यथार्थ जगत में ऐसा होना थोड़ा असंभव है' जैसे आरोप इस चरित्र पर लग सकते है। लेकिन यह भी सच है कि ऐसा नहीं है कि यथार्थ जगत में ऐसा नहीं होता। रामचंदर का चरित्र सभी अर्थों और कोणों से एक वास्तविक चरित्र लगता है। वह स्वाभिमानी है। उसका कोर्ट के सामने कुछ न बोलना उसके मन में अंतर्द्वन्द्व को दर्शाता है। उसे अपने किए पर पछतावा नहीं है लेकिन थोड़ा डर उसके मन में जरूर है। डर है भेद खुल जाने का बेइज्जती, अपमान को दोबारा सहने का। उसके इस डर को, जिसके खिलाफ उसने लड़ाई की है, स्वदेश दीपक बखूबी उभारते है तथा रामचंदर का चरित्र विश्वसनीय चरित्र बन जाता है।

रामचंदर जैसा क्रंदन अंत में करता है, वह उसकी सारी व्यथा को उड़ेल कर रख देता है। सिद्धड़ भी रोटी के लिए ऐसा ही क्रंदन करता है। स्वदेश दीपक के मुख्य चरित्र मन ही मन घुलकर रह जाने वाले चरित्र है जो अंत में आकर एक साथ अपनी सारी व्यथा, क्रंदन, आर्तनाद के माध्यम से व्यक्त करते हैं। 'जलता हुआ रथ' में बाबा का अंत में डिब्बे लेकर जोर-जोर से बजाना इसी का उदाहरण है। 'काल कोठरी' में लेखक की पत्नी का क्रंदन इसी में शामिल है, हालांकि वह मुख्य पात्र नहीं है फिर भी उसका क्रंदन उसके बेटे की मौत पर उसके दु:ख को प्रकट करता है।

स्वदेश दीपक के नाटकों में एक चरित्र शिक्षित युवा वर्ग का प्रतिनिधि अवश्य शामिल है। जो

बिकास राय (कोर्ट मार्शल) के रूप में वकील और 'आत्मा का अहेरी' है, प्रभात (बाल भगवान) के रूप में छोटा पात्र ही सही युवा वर्ग का, नई सोच का प्रतिनिधि है, बाबा (जलता हुआ रथ) के रूप में संवेदनशील, शिक्षित है, रज़त (काल कोठरी) के रूप में नाटक का नायक, शिक्षित, युवक, कलाकार है, अपूर्वा (सबसे उदास कविता) के रूप में नक्सली, सशस्त्र क्रांति का पुरोधा है।

ये सभी पात्र अलग वर्ग, जाति, लिंग, स्थान, स्थिति के होने के बावजूद विचारों में एक जैसे से लगते हैं। ये सब मार्क्सवादी दृष्टिकोण रखने वाले, सच्चाई को महत्त्व देने वाले, शिक्षित, अंग्रेजी पढ़े लिख लोग हैं जो समाज के यथार्थ को जानते समझते हुए भी अपने-अपने तरीके से उसका सामना कर रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान इन्हें बहुत है, बात-बात पर अंग्रेजी बोलना लेकिन 'हिन्दी' के प्रति अतिरिक्त रूझान रखना जैसी विशेषता कमोबेश इन सारे चरित्रों में है।

बिकास राय (कोर्ट मार्शल) शिक्षित है, वह अफसरों का 'हरामी भाईचारा' निभाने की बजाय सच्चाई को कोर्ट के सामने ला देता है। स्वदेश दीपक उसे भी 'नक्सली के भाई' के रूप में जोड़कर उसके विचारों पर मार्क्स के प्रभाव को रेखांकित करते है। पं. बंगाल का होने के बावजूद उसका हिन्दी बोलना उसके चरित्र को भाषा के प्रति, आम लोगों के प्रति ऐसा व्यवहार करना कहीं न कहीं इस ओर संकेत करता है कि हिन्दी आम जन की भाषा है और अंग्रेजी 'रूलिंग क्लास' की।

बहरहाल, प्रभात (बाल भगवान) भी विचारों से मार्क्सवादी है। वह धर्म के बारे में कहता हैं- "आप तो अध्यापक हैं, गुरु हैं। लोगों को वीरता और विवेक से जीना सिखाएँ। लेकिन आप पिलाते रहते हैं उन्हें धर्म की अफीम, ताकि नशेड़ी न होश में आएँ और न अपना हक मांगें।"[17]

प्रभात, मास्टर के सामने अपने विचार प्रकट करना है लेकिन कहीं भी कार्य रूप में वह कुछ ऐसा नहीं करता। उसका चरित्र भर्ती का चरित्र ही सिद्ध होता है।

बाबा (जलता हुआ रथ) भी अधेड़ होने के बावजूद शिक्षित युवा वर्ग का प्रतीक है। दंगों में अपने बेटे को खोने के बाद वह भिखारियों के समूह में शामिल हो जाता है। वह अपनी बातों से सबको प्रभावित करता है। वह शिक्षित है, अंग्रेजी का उसे अच्छा ज्ञान है। वह कहता भी है कि भाषा बुरी नहीं, लोग बुरे होते हैं। वह छोटी लड़की दुर्गा को जीभ से सलाई लगवाने के लिए मना लेता है। सब पर

टीका-टिप्पणी करता है। सौंदर्य और धरती की शक्ति के बारे में मुन्ना को बड़े-बड़े भाषण टाइप देता है। वह सब जगह अपनी मन मर्जी करता है तथा सभी पर अपना प्रभाव छोड़ता है लेकिन इसके बावजूद एक क्रियाशील व्यक्ति की जगह वह बड़ी-बड़ी बाते कहने वाले शिक्षित युवा का प्रतिनिधित्व ही करता है। उसका ऐसा करना समाज और व्यवस्था के चरित्र को भी दिखलाता है जिसमें व्यक्ति सब कुछ जानकर समझकर भी कुछ न कर पाने के लिए विवश है।

रज़त (काल कोठरी) युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता एक अभिनेता है, जो घर गृहस्थी को चलाने के लिए नौकरी करने को मजबूर हो जाता है। 'बीवी की कमाई' खाने वाला रज़त एक सफल अभिनेता है लेकिन "जिन्दगी कोई नाटक नहीं जिसकी लाइनें हिसाब-किताब से बोली जाए.... सच कोई नाटक नहीं, कोई स्टेज नहीं.... सच शादी है। सच है परिवार।"[18] इसी सच्चाई का सामने करने के लिए एक सफल अभिनेता समाज व्यवस्था में, भ्रष्टाचार की इस जंग में, महंगाई के जमाने में, घर-परिवार चलाने में 'असफल' हो जाता है। इंटरव्यू में शर्मा द्वारा पूछे गए बेतुके सवालों पर वह भड़क जाता है और उसका कॉलर पकड़ लेता है। रजत शांत है, संवेदनशील है, सच्चाई को जानकर भी उसे बदल न पाने के कारण मजबूर है। उसका बेटा लंगड़ा है, उसकी पत्नी, परिवार न चला पाने के कारण आर्थिक रूप से तंग होने के कारण क्रोधित है, उस पर झल्लाती है, वह एक्टर ही रहना चाहता है लेकिन मजबूरी में वह इंटरव्यू देने जाता है। ये सब बातें उसके क्रोधी होने के पीछे के कारणों को स्पष्ट करती हैं। समाज में रहने के लिए, घर परिवार चलाने के लिए आर्थिक रूप से सशक्त होना जरूरी है। अभिनेता के पास कमाई का कोई ओर साधन नहीं है। समाज में अभिनेता के जीवन को, कला के मूल्य को 'काल कोठरी' नाटक बखूबी व्यक्त करता है। कला के संरक्षण और प्रोत्साहन के नाम पर वसुन्धरा जैसे लोगों को नौकरी देना, केवल लोकप्रिय साहित्य का प्रचार करना, अंतर्राष्ट्रीय पहचान बनाने के कला के मूल रूप को जाने बिना केवल प्रदर्शन के स्तर पर उसको बढ़ावा देना आदि कार्य ही राज्य और राष्ट्र के लिए है। रजत जैसे अभिनेता आर्थिक तंगी में जीवन गुजर-बसर कर रहे है और वसुंधरा जैसी लड़कियों को नौकरी मिल जाती है। ऐसे में रजत जैसे अभिनेता का क्रोध स्वाभाविक है। उसके चरित्र का विकास स्वदेश दीपक ने बखूबी किया है।

अपूर्वा (सबसे उदास कविता) शिक्षित पत्रकार है। वह नक्सलाइट मूवमेंट से जुड़ी है। न्याय व्यवस्था के खिलाफ वह स्वयं न्याय करती है, लोगों को मृत्युदंड देती है। मार्क्सवादी विचारधारा की

समर्थक अपूर्वा शोषित जनों के साथ मिलकर 'रूलिंग क्लास' के विरूद्ध सशस्त्र क्रांति में विश्वास रखती है। उसका क्रांतिकारी काम करना, मृत्युदंड देना आदि उसके व्यक्तित्व के एक पक्ष को उद्घाटित करता है। ऊपर से कठोर दिखने के बावजूद वह एक नरम दिल युवती है। समाज के लिए अपने निजी जीवन की बलि देने के बावजूद डॉ. सुकांत से वह मन ही मन प्रेम करती है। उससे शादी करके घर बसाना चाहती है लेकिन क्रांतिकारी विचारधारा से जुड़ी होने के कारण वह ऐसा नहीं कर पाती। मृत्युदंड के समय आखिरी वक्त में भी उसे सुकांत की चिंता ज्यादा है। उसका यह कहना कि- "तुमसे शादी होती तो परिवार नियोजन बिल्कुल न करती। पूरे सात बेटों और एक बेटी को जन्म देती।"[19] फिर अंत में सुकांत को भयभीत होकर 'रोक लेने' के लिए कहना उसके चरित्र को स्वाभाविक और पूर्ण चरित्र बनाता है। उसके मन में भी डर है, वह भी 'सशस्त्र क्रांति' की यह लड़ाई छोड़कर सुखी वैवाहिक जीवन जीना चाहती है, वह भी एक समान्य इंसान की जिंदगी जीना चाहती है, लेकिन समाज-व्यवस्था, कानून-व्यवस्था उसे फांसी दे देती है।

इस प्रकार इन नाटकों के चरित्रों में हम देखते हैं कि ये मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित हैं तथा इतना सब होने पर भी आशा की एक किरण मन में अवश्य रखते हैं। सभी नाटकों में मुख्य चरित्र है तथा उसके विकास के लिए अन्य सहायक चरित्र है। कथावस्तु और चरित्र योजना एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हैं, हालांकि कुछ चरित्र अनावश्यक भी लगते हैं जैसे प्रभात (बाल भगवान), राजेश (काल कोठरी), पिता और बेटा (जलता हुआ रथ) आदि। कुछ चरित्रों का व्यवहार एकांगी ही लगता है। 'सबसे उदास कविता' में जमींदार की पत्नी शक्तिशाली व्यक्तित्व वाली शिक्षित भद्र महिला है। स्त्रियों के बारे में उसके विचार 'पुरुष की भोग्या' तक सीमित है जबकि वह स्वयं एक स्त्री है। उसके बेटे की मृत्यु को गयी है लेकिन कहीं भी उसके व्यवहार में संवेदना व्यक्त नहीं हो पाती वह हर वक्त कठोर ही रहती है। उसका व्यवहार बनावटी ज्यादा लगता है। इसी तरह 'कोर्ट मार्शल' में गार्ड का व्यवहार भी ऐसा ही लगता है। अन्य सभी चरित्र कमोबेश कथावस्तु के विकास में सहायक है, उनके जीवन के अन्य पक्षों का ब्यौरा न आने पर जितना भी व्यक्त हुआ है वह उनके अलग स्वतंत्र चरित्र को विकसित करने की बजाय नाटक को आगे बढ़ाने में सहायक मात्र हैं।

नाटक में कथावस्तु, चरित्र आदि का विकास संवादों द्वारा होता है। संवाद-योजना किसी भी

नाटक की जान होते हैं। लेकिन नाटक मात्र संवाद नहीं है। कहानी को नाट्यारूपांतरित करते समय कुछ लोग उसे केवल संवाद-मात्र बना देने से 'नाटक' कहने लग जाते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। संवादों का भी अपना एक रूप होता है। संवाद-योजना नाटक के पूरे चरित्र को उसकी कथावस्तु को निर्धारित करती है। चरित्रों का विकास उनके द्वारा बोले गए संवादों द्वारा ही होता है। संवादों में बेवजह बोले गए लम्बे-लम्बे भाषण चरित्र को कमजोर ही करते हैं उसे विकसित नहीं करते इसलिए संवाद-योजना का बेहतर होना किसी भी नाटक के लिए अनिवार्य बन जाता है। प्रसाद के नाटकों की संवाद-योजना ही कमोबेश उनके प्रदर्शनों में असफल होने का कारण बन जाती है। मोहन राकेश ने संवादों में संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हुए भी, चरित्र और कथावस्तु के तारतम्य के रूप में संवादों को रखकर नई जमीन तोड़ी। पात्र किस तरह के संवाद बोलते है वह उनके देश काल परिस्थिति के अनुसार है कि नहीं? संवाद पात्रों के चरित्र के अनुसार है कि नहीं? यहीं सब बातें संवाद-योजना के विश्लेषण के अंतर्गत आती है। संवादों का कथावस्तु, चरित्र-चित्रण के साथ तारतम्य होना अति आवश्यक है। कई बार नाटक में केवल संवाद प्रभावित करते हैं, उनसे प्रस्तुत कथावस्तु या चरित्र नहीं। ऐसा होना भी कमजोर रचना का उदाहरण है। पारसी थियेटर के नाटकों में संवाद पर ही ज्यादा जोर होता था, जो 'एक बार और' कहने को मजबूर करते थे, लेकिन समग्र प्रभाव की दृष्टि से वे नाटक साहित्यिक रूप में एक कमजोर रचना है। एब्सर्ड नाटकों में स्थिति को दर्शाने के लिए उल जुलूल संवादों का दौर आया। यथार्थपरक नाटकों में आम बोलचाल की भाषा में संवादों की अदायगी होनी शुरू हुई।

दरअसल संवादों का महत्त्व नाटक में बहुत है। वे नाटक को नाटकत्व प्रदान करते हैं। संवाद अदायगी का महत्त्व रंगमंच पर ज्यादा होता है लेकिन साहित्यिक दृष्टि से भी संवादों का विशिष्ट होना आवश्यक है। संवादों के प्रकार के रूप में स्वगत कथन, सूच्य कथन, आपसी संभाषण, आदि का नाम लिया जा सकता है। नाटककार किस तरह के संवाद का, किस स्थिति में प्रयोग करता है, यह योजना दृष्टव्य है। जैसे सूच्य कथन के रूप में 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' (सुरेन्द्र वर्मा) नामक नाटक में ओक्काक और परिचारिका के संवाद अतिविशिष्ट और नई शैली का सूत्रपात करते हैं। स्वयंवर के दृश्य को सूच्य और आपसी संवाद के अनोखे मेल से दर्शाया गया है। इस प्रकार स्वगत कथन की भी अनेक कोटियाँ और उदाहरण मौजूद हैं।

स्वदेश दीपक अपने नाटकों में स्वगत कथन का इस्तेमाल बहुत करते हैं। स्वगत कथन में पात्र श्रोता और वक्ता दोनों होता है। स्वगत कथन स्थिति पर प्रकाश डालने, आत्मविश्लेषण करने, चरित्र की आंतरिक अनुभूति को व्यक्त करने आदि के लिए किया जाता है। रंजीत कपूर (कोर्ट मार्शल) का नाटक के शुरूआत में ही स्वगत कथन है। जो उसके चरित्र के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करता है। अपने इतिहास समेत वर्तमान में अपनी स्थिति पर विचार करता रंजीत कपूर नाटक के मूल अर्थ या उद्देश्य को उद्घाटित करने में, जिज्ञासा उत्पन्न करने में महती भूमिका निभाता है।

इसी प्रकार का आत्मविश्लेषणात्मक स्वगत कथन पंडित (बाल भगवान) का है। रंजीत कपूर (कोर्ट मार्शल) मंच पर अकेला है और अपने बारे में कह रहा है। पंडित के सामने पंडिताइन है, लेकिन उसके संवादों से लगता है जैसे मंच पर कोई नहीं है वह अपने आप से बात कर रहा है। स्वगत कथन का यह रूप अपने आप में विशिष्ट है। चरित्र को गहराई तक समझाने के लिए इसका प्रयोग किया गया है। पंडित का आत्मविश्लेषण इतना गहरा है कि उसे पंडिताइन की उपस्थिति से कोई फर्क नहीं पड़ रहा है वह बोले जा रहा है। इसी प्रकार रजत (काल कोठरी) अंत में नाटककार (नवीन वर्मा) द्वारा लिखा नाटक मंच पर अभिनीत करता है और लंबा स्वगत कथन बोलता है जो दर्शकों को संबोधित है। यहाँ दर्शक श्रोता भी हैं। रजत का यह कथन नाटक के भीतर अन्य नाटक का है लेकिन पूरे नाटक की अर्थछवि, कलाकार की विडंबना, असहाय पिता की स्थिति, समाज के चरित्र को बयान करने वाला बन जाता है। स्वगत कथनों का यह इस्तेमाल स्वदेश दीपक के नाटकों की संवाद-योजना का महत्त्वपूर्ण अंग है।

गोविन्द चातक के शब्दों में- "संवाद देश काल का अनावरण ही नहीं करता, स्थिति पर निर्भर करता है और स्वयं स्थिति को भी पैदा करता है। उससे कार्य व्यापार उभरता है, जन्म लेता है और उसका रूपांतरण होता है। इस प्रकार संवाद पात्र के आंतरिक जीवन में निरंतर चलती अनुक्रिया के अंग बन जाते हैं।"[20] किसी भी चरित्र के संवाद उसे विकसित करने, समझने में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। 'बाल भगवान' में मास्टर के धर्म के बारे में संवाद उसके चरित्र को पेश करते है। वह बार-बार बाल भगवान पर आस्था व्यक्त करता है या उसका ढोंग करता है। अपने विचारों को पुष्ट करने के लिए उसके संवाद महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। अपूर्वा (सबसे उदास कविता) के साहित्यिक और हिंसा मिश्रित संवाद उसके चरित्र को पूर्णता प्रदान करते हैं। जैसे-

"सुकांत : कमरा बहुत छोटा है।

अपूर्वा : शादी के बाद बड़ा मकान ले लेंगे।

सुकांत : तुम मुझे हमेशा छेड़ती क्यों हो?

अपूर्वा : तुम हमेशा रूठ क्यों जाते हो रे। मेरी तो जिंदगी गुजर जाएगी तुम्हें मनाने में। चल, मना लूंगी रे। मज़ा आता है तुम्हें मनाने में अच्छा छोड़ो। चाय पीओगे? बहुत अच्छी बनाती हूँ।

आगे अपूर्वा इसी क्रम में कहती है-

"नहीं करना पड़ेगा पोस्टमार्टम। जब बहुत से गरीब एक साथ मरे तो सरकार पोस्टमार्टम माफ कर देती है। गरीबों को खुश करने का एक और तरीका।...

सशस्त्र क्रांति में जिनका विश्वास हो वह कुछ लोगों के मरने पर रोते नहीं। वे शत्रु को मारने के तरीके खोजते हैं। अब भावुक होने से नहीं चलेगा।"[21]

अपूर्वा के ये संवाद, कभी प्रेम, कभी नाराजगी, कभी सशस्त्र क्रांति और हत्या की बातें एक साथ आकार विरोधाभासी रूप में अपूर्वा के चरित्र के अंतर्द्वन्द्व को प्रकट करते हैं। संवाद-योजना की यह शैली चरित्र को उजागर करने में सर्वोतम साबित होती है।

इसी प्रकार की संवाद-योजना स्वदेश दीपक के नाटकों की विशेषता है। छोटे-छोटे संवाद, 'जलता हुआ रथ' नाटक में प्रयुक्त हुए हैं जो दंगों के बाद के जीवन को परिलक्षित करते हैं। स्थिति और संदर्भ को दर्शाने में और स्थिति के निर्माण में संवाद महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। बाबा (जलता हुआ रथ) और बूढ़े के संवाद है-

"बूढ़ा : कौन हो भाई। क्यों बैठे हो वहाँ! नए आए हो शहर में! रास्ता तो नहीं भूल गए।

अधेड़ (बाबा) : कौन हो भाई। क्यों बैठे हो बाड़े में। छत नहीं दरवाजे नहीं। फिर खिड़कियाँ क्यों कर होंगी। रास्ता तो नहीं भूल गए अपने घरों को।

बूढ़ा : देख नहीं सकते। आदमी हैं।

अधेड़ : देख नहीं सकते। आदमी हूँ।"[22]

अधेड़ (बाबा) का बूढ़े के संवादों को दुहराना स्थिति की विडंबना को दर्शाता है। समाज की संरचना और सत्ता के चरित्र ने 'आदमी' को 'भिखारी' बना दिया है, जिनके पास न अपना घर है, न मूलभूत आवश्यकताओं को पूरी करने का साधन। बूढ़ा भी आदमी होकर 'आदमी' नहीं रह गया और अधेड़ भी अब उसी श्रेणी में आ गया है। एब्सर्ड नाटकों जैसी यह दुहराव की शैली स्वदेश दीपक के नाटकों में कई जगह आई है। 'बाल भगवान' में रतन चौधरी का बार-बार 'दस किल्ले जमीन का मालिक' होने की बात कहना उसके चरित्र को प्रस्तुत करता है कि उसे इतनी बड़ी जमीन होने का घमण्ड है। 'कोर्ट मार्शल' में डॉक्टर का बार-बार 'मैंने बचाया' शब्द कहना भी उसके अहं प्रदर्शन को दिखाता है। चरित्र को स्पष्ट करने में प्रयुक्त यह दुहराव शैली संवाद-योजना की विशिष्टिता को उद्‌घाटित करती है।

संवाद शैली का एक और रूप मौन रह जाना भी है। दरअसल व्यक्ति का चरित्र उसकी स्थिति-अवस्थिति, देशकाल आदि भी संवादों का निर्धारण करती है। स्थिति के तनाव को दर्शाने के लिए मौन रह जाना भी संवाद-योजना का एक हिस्सा है। भावों को प्रकट करने के लिए, स्थिति के तनाव को व्यक्त करने के लिए मौन का प्रयोग स्वदेश दीपक ने बहुत किया है। 'कोर्ट मार्शल' में रामचंदर बहुत कम संवाद बोलता है। पूरे नाटक में उसका चुप रहना ही स्थिति के तनाव को ओर गहरा करता चला जाता है। उसका यह मौन अंत में क्रंदन के रूप में प्रस्फुटित होकर चरम पर पहुँच जाता है। संवाद अदायगी का यह रूप नाटक के विशेष अर्थ को उद्‌घाटित करने में सफल प्रतीत होता है। मितव्यता स्वदेश दीपक के नाटकों की संवाद-योजना का एक अन्य गुण है। कमोबेश कोई भी पात्र अनावश्यक संवाद नहीं बोलता। सारे संवाद कथावस्तु और चरित्र को विकसित करते, देशकाल और संदर्भानुकूल हैं। चरित्रों के हिसाब से संवादों में व्यंग्य, हास्य, दार्शनिकता का समावेश है।

संवाद-योजना में लय, बोलने के लहजे का बहुत महत्त्व है। यह गुण उसमें रंगमंच पर समाहित होता है।

संवाद-योजना में भाषा का ध्यान रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है। संवाद 'शब्द' ही होते हैं। "भाषिक संरचना के माध्यम से नाटक का ढाँचा खड़ा किया जाता है और ढाँचे के बीच घटना क्रम के विकास के साथ कथावस्तु का उद्‌घाटन, देश-काल का निर्धारण और चरित्रों की स्थापना होती है। क्रिया-व्यापार

की प्रक्रिया, चरित्रों के पारस्परिक संबंध और उनकी भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं का अहसास भी उस भाषिक संरचना से होता है जो नाट्य पाठ का निर्माण करती है।"[23]

नाटक की भाषा के संबंध में अनेक विचार आलोचकों ने प्रकट किए हैं। नेमिचंद्र जैन नाटक की भाषा को काव्य के अधिक नजदीक पाते हैं। वे लिखते हैं- "नाटक में भाषा का सर्वथा अभिनव प्रयोग होता है। नाटक की भाषा में एक साथ ही काव्य जैसी गहन लाक्षणिकता, सूक्ष्मता और चित्रवत्ता और बोलचाल की भाषा की सी मूर्तता, प्रवाह और सरलता होती है। उसमें यथानुकूल विविधता और लचीलापन भी होता है और समर्थ भाषा की शैलीपरकता, विशिष्टता और साहित्यिकता भी। श्रेष्ठ नाटक की भाषा ऐसी होती है कि उसमें भाव, विचार और चित्र तीनों को वहन करने का सामर्थ्य तो हो, पर फिर भी वह बोलचाल की भाषा से बहुत दूर न हो।"[24]

नेमिचंद्र जैन एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाते हैं। पात्रानुकूलता के संबंद्ध में गोविंद चातक के भी कुछ इसी तरह के विचार है। आचार्य भरत ने नाटक को 'काव्य' की कोटि के अंतर्गत रखा। नाटक की भाषा को काव्यात्मक और पात्रानुकूल होना चाहिए- ऐसा मानने वाले आलोचकों में गिरीश रस्तोगी भी है। मुद्राराक्षस इनसे भिन्न दृष्टिकोण अपनाते हुए साहित्य की सभी विधाओं से नाट्य भाषा को विशिष्ट मानते हैं। उनके अनुसार- "साहित्य की अन्य विधाओं के विपरीत नाटक की भाषा मूलत: अर्थसीमित नहीं होती। कविता की भाषा जहाँ किसी हद तक गणितीय सतर्कता के साथ अर्थानुसरण करती है, वहाँ नाटक की भाषा काफी हाशिया छोड़ देती है। वह संपूर्ण, उद्दिष्ट अर्थ सीधे पाठक-दर्शक तक नहीं पहुँचाती।"[25]

इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं- "जिस नाटक की भाषा में ये अर्थ विशिष्टताएँ पैदा करने की गुंजाइश सबसे ज्यादा हो वह सबसे अच्छा नाटक हो सकता है। इसे हाशिए वाली भाषा कह सकते हैं जिसमें हर नया आदमी अपने विशिष्ट अर्थ अंकित कर सकें।"[26]

हालांकि नाट्य भाषा अन्य विधाओं से विशिष्ट होती है लेकिन यह भी सही है कि अर्थ छवियों की विविधता प्रत्येक साहित्यिक विधा में होती है। कहानी, उपन्यास, कविता आदि का भी कोई एक निश्चित अर्थ न होकर पाठकानुसार अलग-अलग अर्थ होता है।

मोहन राकेश ने नाट्य भाषा के संदर्भ में एक नया मुहावरा 'हरकत करने वाली भाषा' गढ़ा। राकेश के नाटकों की भाषा एकदम गढ़ी हुई और निश्चित है। वह दृश्यात्मक है। भाषा पढ़ने नहीं बल्कि देखने की चीज यहाँ बन गई है अर्थात् बिंबों को समझाने में समर्थ सिद्ध होती है।

पात्रानुकूल भाषा के संबंध में भी अनेक मत हैं। पात्रों के परिवेश के अनुकूल भाषा हो या सभी पात्र नाटककार की भाषा अर्थात् एक जैसी भाषा बोले। जयशंकर प्रसाद के पात्रों की भाषा नाटककार की भाषा है और अति काव्यात्मक और संस्कृतनिष्ठ है। उनका तर्क है कि अगर विदेशी पात्र होगा तो क्या विदेशी भाषा बोलेगा। दूसरी ओर भारतेंदु के नाटक में बोलने के लहजे में अंतर करके पात्र विशेष को दिखाया गया है।

अब सवाल यह उठता है कि नाट्य भाषा क्या स्वरूप हो और स्वदेश दीपक के नाटकों में उसका रूप क्या है?

जहाँ तक नाटककार की भाषा का प्रश्न है या पात्रानुकूल भाषा का कथन है, यह सही है कि सभी पात्र नाटककार की भाषा न बोले, उनमें विविधता अवश्य हो लेकिन यह भी सही है कि यह विविधता इतनी न हो जाए कि दर्शकों को समझ ही न आए। स्वदेश दीपक इस विविधता का निर्वाह भाषा के अलगाव से न करके, भाषा की विभिन्न शैलियों से करते हैं। अर्थात् उनके सभी पात्र एक जैसी सरल बोलचाल की हिन्दी बोलते हैं लेकिन पात्रों के अलग-अलग चरित्र के हिसाब से बोलने की शैली और शब्दों का प्रयोग उसमें मिलता है। जैसे 'बाल भगवान' के सभी पात्र ग्रामीण है लेकिन वे किसी अलग-अलग बोलियों में न बोलकर सरल हिंदी बोलते हैं वहीं शहरी शिक्षित पात्र अंग्रेजी के शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। भाषा की यहीं विविधता स्वदेश दीपक की पात्रानुकूलता का परिचय देती है जो कहीं न कहीं भारतेंदु की नाट्यभाषा के समीप नज़र आती है।

स्वदेश दीपक के सभी नाटकों में शहरी शिक्षित समाज के पात्र अपनी भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का इस्तेमाल अवश्य करते हैं। उन्होंने अंग्रेजी भाषा का अच्छा इस्तेमाल चरित्र संरचना में किया है। बी. डी. कपूर (कोर्ट मार्शल) 'रूलिंग क्लास' का है जो हिंदी भाषा क्षेत्र से होकर भी 'टूटी-फूटी हिंदी' में बोलता है और अंग्रेजी में बात करना अपनी शान समझता है। यहाँ अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग बी.

डी. कपूर के चरित्र को समझने में सहायक सिद्ध होता है। बाबा (जलता हुआ रथ) अंग्रेजी बोलता है तो सब उसे पढ़ा-लिखा समझते हैं। वह भी अंग्रेजी का इस्तेमाल अपनी भाषा में करता है। जमींदार की पत्नी (सबसे उदास कविता) शिक्षित है, अंग्रेजी के शब्दों का इस्तेमाल करती है। जमींदार की पत्नी का अंग्रेजी बोलना उसके रूतबे को प्रदर्शित करता है। वह इंग्लैंड से पढ़कर आई है और डी.एस.पी. पर रोब जमाने के लिए अंग्रेजी साहित्य की कुछ पंक्तियों का इस्तेमाल करती है।

'काल कोठरी' में शर्मा अंग्रेजी का कवि होने पर अपने आप को गौरवान्वित महसूस करता है। दरअसल स्वदेश दीपक अंग्रेजी साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। वे अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। अंग्रेजी भाषा 'रूलिंग क्लास' के लिए प्रतिष्ठा की भाषा बन गई है। इसी विचार से स्वदेश दीपक अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल करते है लेकिन वहीं अंग्रेजी क्रांतिकारी मार्क्सवादी विचारधारा रखने वाले शिक्षित युवकों के लिए प्रेरणादायक बन गयी। इसलिए इस कोटि के पात्रों के लिए स्वदेश दीपक अंग्रेजी साहित्य की पंक्तियों का इस्तेमाल करते है। इसके अलावा 'बाल भगवान' में बोली के पुट के नाम पर कुछ पात्रों पर पंजाबीपन का असर है। पंजाबी बोली का यहीं पुट 'जलता हुआ रथ' के किशन सिंह की भाषा में भी है।

स्वदेश दीपक के नाटकों की भाषा 'हरकत करने वाली भाषा न होकर' कहीं कहीं दार्शनिक, काव्यात्मक, कहानीनुमा ज्यादा लगती है। बाबा और मुन्ना (जलता हुआ रथ) के संवादों में सौंदर्य की परिभाषा के रूप में, तथा अन्य वक्तव्यों में दार्शनिकता ज्यादा लगती है। यथा- "योद्धा कभी नहीं मरते। फांसी घर से एक चमकता हुआ सूरज निकलता है और उग जाता है अनगिनत आत्माओं में। कभी नहीं मरता सच्चा योद्धा की चिता की एक-एक लपट से सौ-सौ योद्धा जन्म लेते हैं। तब होता है जन्म डरावनी सुंदरता का, भयभीत कर देने वाले सौंदर्य का। ए टैरीबल ब्यूटी इन वार्न।"[27]

इसी प्रकार बिकास राय (कोर्ट मार्शल) 'आत्मा का अहेरी' है। वह कोर्ट रूप में दार्शनिक की तरह बातें करता है। हालांकि उसकी भाषा उसके चरित्र को व्यक्त करती है लेकिन अतिदार्शनिकता का मोह कभी-कभी अटपटा भी लगता है।

अपूर्वा (सबसे उदास कविता) समय और संदर्भ के अनुकूल भाषा का प्रयोग करती है। सुकांत के साथ उसकी भाषा में प्रेमी जन्य लय और माधुर्य का समावेश हो जाता है, वहीं पुलिस आदि के

सामने उसकी भाषा कठोर हो जाती है। समय और संदर्भानुकूल भाषा का प्रयोग स्वदेश दीपक के नाटकों की अन्य विशेषता है। लेकिन समय और संदर्भानुकूल भाषा होने पर भी उनके नाटकों की भाषा कहानी के नज़दीक ज्यादा लगती है। वह श्रेष्ठ नाट्य भाषा नहीं बन पाई है। मास्टर (बाल भगवान) के धर्म के विजय में निरर्थक संवाद, धर्म को पहाड़ आदि कहना या बीच में अंतरालिका में दो पुजारिनों का संवाद निरर्थक और बनावटी लगता है। वह पात्रानुकूल नहीं है। यथा- "धर्म के सिंह को आदिकाल से तर्क के अहेरी घेरे बैठे है। लेकिन सिंह की गर्जना सुनते ही त्राहि-त्राहि मच जाती है। धर्म एक चट्टान है, न हिलने वाली चट्टान। और तर्क, मात्र रेत! चट्टान के चारों ओर बिखरी रेत!"[28] गाँव की पुजारिनों द्वारा इस तरह की भाषा का प्रयोग करना बहुत अटपटा सा लगता है।

स्वदेश दीपक के नाटकों में भाषा चरित्रानुकूल है। चरित्रों के हिसाब से व्यंग्य, हास्य, क्षोभ, करूणा आदि का पुट उसमें है। विकास राय (कोर्ट मार्शल) की भाषा में हल्का क्रोध मिश्रित व्यंग्य झलकता है। तो रजत (काल कोठरी) की भाषा में मजबूरी का भाव प्रकट होता है।

मुहावरों का प्रयोग भी नाटकों में मिलता है लेकिन मुहावरे कहीं भी भरती की प्रक्रिया द्वारा न आकर स्वाभाविक बोलचाल के साथ प्रयुक्त हुए हैं 'काल कोठरी' में 'छटी का दूध याद आना', 'सातवें आसमान पर आदर्शों का ढ़ोल बजाना', 'स्याना कौआ गंदगी पर बैठता है', 'भिगो-भिगोकर जूते मारना' मुहावरों का प्रयोग मिलता है।

सूक्तियों का प्रयोग नाटककार अधिकतर कहानी की तरह अपनी उपस्थिति दर्ज कराने हेतु करते हैं। स्वदेश दीपक ने यह काम धर्म, सौंदर्य, आदि पर पात्रों द्वारा टीका टिप्पणी के रूप में किया है। 'धर्म एक अफीम है' यह पंक्ति स्वदेश दीपक के लगभग सभी नाटकों में अवश्य मिलती है। 'सौंदर्य बहुत घातक होता है', 'सुंदर औरतें बेवकूफ होती है' आदि पंक्तियाँ स्वदेश दीपक की आत्मकथात्मक रचना 'मैंने मांडू नहीं देखा' को लेकर उनकी कहानियों और नाटकों में कमोबेश किसी न किसी रूप में अवश्य शामिल है।

स्वदेश दीपक के नाटकों की भाषा की एक अन्य विशेषता विभिन्न अर्थ छवियों की व्यंजना भी है। 'कोर्ट मार्शल' में भाषा सरल, स्पष्ट, भावानुकूल है। कोर्ट मार्शल रामचंदर का हो रहा है लेकिन वह

मौन है और अन्य पात्र बोल रहे है। अंत तक जाते जाते जैसे-जैसे परतें खुलती जाती है अन्य पात्रों का कोर्ट मार्शल होने लगता है। मुकदमे की प्रक्रिया में मुकदमा ही अर्थव्यंजक हो जाता है। "केन्द्रीय पात्र रामचंदर का पूरे नाटक में मौन रहना भी अर्थव्यंजना सांकेतिकता और प्रतीकार्य को बढ़ाता है- गहरा करता है।"[29]

'काल कोठरी' में भाषा का सौंदर्य शब्दों में न होकर विशिष्ट लय और टोन के उतार-चढ़ाव में है। इंटरव्यू में शर्मा का वसुन्धरा को नौकरी देना उसके अंग्रेजी बोलने और लड़की होने के कारण है लेकिन यह सब शब्द रूप में न कहकर केवल टोन द्वारा कहा गया है। वसुन्धरा का भी डॉ. शर्मा को देखकर उन्हीं की लय में बात करना दृष्टव्य है।

स्वदेश दीपक की नाट्य भाषा में समकालीन युग के तनाव को पकड़ने की असीम क्षमता है। नाटक के अर्थ और उद्देश्य को उद्घाटित करने में उनकी भाषा समर्थ प्रतीत होती है। 'नाटकीय भाषा' का श्रेष्ठ उदाहरण न होते हुए भी भाव व्यंजना के संदर्भ में इन नाटकों की भाषा सफल कही जा सकती है।

स्वदेश दीपक मूलत: कथाकार है। 'बाल भगवान' कहानी का नाट्यरूपांतरण करके उनके भीतर का नाटककार जागता है। 'कोर्ट मार्शल' दसवें दशक का श्रेष्ठ नाटक है। हालांकि बीमारी के बाद लिखे गए 'जलता हुआ रथ', 'काल कोठरी', 'सबसे उदास कविता' में नाटकीयता कम और कहानीपन ज्यादा है ये नाटक उस ऊंचाई तक नहीं पहुँच पाते जिस पर 'कोर्ट मार्शल' खड़ा है। फिर भी सारे नाटक विभिन्न विषयों पर लेखक की संवेदनशीलता के नाटकीय पक्ष को द्योतित करते है। स्वदेश दीपक के नाटक खंड-खंड प्रभावित करने की बजाए समग्र रूप से प्रभावित करते है। 'बाल भगवान', 'कोर्ट मार्शल' इसके श्रेष्ठ उदाहरण है 'जलता हुआ रथ' और 'सबसे उदास कविता' हालांकि समग्रत: इतने प्रभावशाली नहीं बन पाए है। 'सबसे उदास कविता' की स्थितियाँ प्रभावित करती है संवाद नहीं, 'जलता हुआ रथ' के कुछ संवाद ही प्रभावशाली है घटनाएँ नहीं। 'जलता हुआ रथ' में पात्र बहुत ज्यादा है उनमें चरित्र एक ही बन पाया है। डॉक्टर, किशन सिंह, पिता, पुत्र, मंत्री, चेले, बाबा, बुढ़िया, अन्य भिखारी, चित्रकार आदि अनेक पात्र है। मंच पर सदैव भीड़ सी इक्ट्ठा रहती है। यह अपेक्षाकृत एक कमजोर नाटक है। 'सबसे उदास कविता' नक्सली संघर्ष पर आधारित है। विचार और स्थितियाँ इसमें बेहद नूतन

तथा नाटकीय है लेकिन संवाद योजना उतनी प्रभावशाली नहीं है। अपूर्वा के संवाद नाटकीय कम कहानी परक ज्यादा प्रतीत होते हैं। कुल मिलाकर यह एक औसत रचना ही बन पाई है।

विचार और भाव की भूमिका अगर देखे तो स्वदेश दीपक मार्क्सवादी विचारधारा को प्रश्रय देते प्रतीत होते हैं। उनके सभी नाटक इससे अनुप्रेरित है। समाधान के रूप में वे सशस्त्र क्रांति का समर्थन करते हैं। हालांकि उनके नाटकों में मुख्य पात्र की मृत्यु हो जाती है 'बाल भगवान' में सिद्धड़ की, 'कोर्ट मार्शल' में रामचंदर की, 'सबसे उदास कविता' में अपूर्वा की, 'जलता हुआ रथ' में भी मुन्ना की मृत्यु हो जाती है, 'काल कोठरी' में रजत को नौकरी न मिलना धीरे-धीरे मृत्यु के समान ही है। यह 'मृत्यु' या 'हत्या' सामाजिक संरचना को उद्घाटित करती हुई आशा की किरण का संदेश देती है। वे उन विचारकों की तरह नहीं है जो क्रांति के आवेश में केवल बेवजह के नारों और अयथार्थवादी घटनाओं का समावेश अपने नाटकों में करते है। स्वदेश दीपक सामाजिक संरचना को, समाज के यथार्थ को नाटकीय स्थितियों में ढाल कर उसके भीतर से आशा की किरण प्रस्फुटित करते हैं। यहीं उनके नाटकों की खूबसूरती भी है और विशेषता भी। साहित्यिक दृष्टि से स्वदेश दीपक के नाटक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, पाठक की समझ का विकास करते हैं, संवेदना जागृत करते हैं।

सिद्धनाथ कुमार के शब्दों में "नाटक परिवर्तित व्यक्तियों का चित्र नहीं होता, परिवर्तित होते हुए व्यक्तियों का चित्र होता है, इस क्रम में चरित्रों में जो आंतरिक हलचल होती है, द्वंद्व होते है, भावों का घात-प्रतिघात चलता है, इन सबको हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत कर देना ही नाट्य विधा का वैशिष्ट्य है।"[30]

स्वदेश दीपक के नाटकों के संबंद्ध में यह उक्ति सार्थक जान पड़ती है। कोर्ट मार्शल, रामचंदर के मुकदमे के साथ-साथ रंजीत कपूर के आंतरिक परिवर्तन का भी नाटक है। जो रंजीत कपूर इतना आत्मगौरव से, अपनी शक्ति से अहं भाव में चूर था, जिसके पूर्वज इतने महान् योद्धा थे वहीं रंजीत कपूर 'कोर्ट रूम' में अपने आप को निहत्था पाता है। रामचंदर से संबंधित घटनाएँ उसके सामने जीवन के अन्य पक्ष खोलते हैं। अंत में रंजीत कपूर एक आंतरिक रूप से बदला हुआ व्यक्ति नज़र आता है।

इस प्रकार स्वदेश दीपक के नाटक आंतरिक स्तर पर मानव मन को आंदोलित करने वाले नाटक है। उनकी भावभिव्यक्ति, नाटकीय स्थितियाँ अत्यंत प्रभावी बन जाती है जो दर्शक के साथ-साथ पाठक को भी गहरे प्रभावित करती है।

संदर्भ

1 'नाटकालोचन के सिद्धांत', सिद्धनाथ कुमार, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं. 100

2 'काल कोठरी', स्वदेश दीपक, वाणी प्रकाशन, 2002, पृष्ठ सं. 39

3 'जलता हुआ रथ', स्वदेश दीपक, वाणी प्रकाशन, 2009, पृष्ठ सं. 49

4 'बाल भगवान', स्वदेश दीपक, राजकमल प्रकाशन, 2013, पृष्ठ सं. 94

5 वही, पृष्ठ सं. 37

6 'सबसे उदास कविता', स्वदेश दीपक, राजकमल प्रकाशन, 1998, पृष्ठ सं. 16

7 वही, पृष्ठ सं. 45

8 वही, पृष्ठ सं. 45

9 'बाल भगवान' पृष्ठ सं. 185

10 वही, पृष्ठ सं. 84

11 'कोर्ट मार्शल', पृष्ठ सं. 92

12 'जलता हुआ रथ', पृष्ठ सं. 23

13 'नाटकालोचन के सिद्धांत', सिद्धनाथ कुमार, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं. 5

14 'नाटक की साहित्यिक संरचना', गोविन्द चातक, पृष्ठ सं. 91

15 वही, पृष्ठ सं. 90

16 'नाटक बाल भगवान', पृष्ठ सं. 79

17 वही, पृष्ठ सं. 85

18 'काल कोठरी', पृष्ठ सं. 11

19 'सबसे उदास कविता', पृष्ठ सं. 77

20 'नाटक की साहित्यिक संरचना', पृष्ठ सं. 127

21 'सबसे उदास कविता', पृष्ठ सं. 38

22 'जलता हुआ रथ', पृष्ठ सं. 16

23 'नाटक की साहित्यिक संरचना', पृष्ठ सं. 111

24 'रंगदर्शन', नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ सं. 43

25 'योर्स फेथफुली', मुद्राराक्षस, भूमिका से

26 वही, भूमिका, पृष्ठ सं. 2

27 'सबसे उदास कविता', पृष्ठ सं. 58

28 'नाटक बाल भगवान', पृष्ठ सं. 46

29 'वार्षिकी', लेख- गिरीश रस्तोगी, 1991, पृष्ठ सं. 205

30 'नाटकालोचन के सिद्धांत', सिद्धनाथ कुमार, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं. 144

अध्याय-3
रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ

अध्याय-3
रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ

कोई नाट्य कृति तभी पूर्ण मानी जाती है जब वह रंगमंच पर प्रस्तुत होती है। नाटक की सफलता असफलता का एक पैमाना उसका प्रस्तुतिकरण भी है। स्वदेश दीपक के नाटक साहित्यिक या पाठ्यकृति के तौर पर उत्कृष्ट है। इस अध्याय में उनके नाटकों की रंगमंचीय प्रस्तुतियों पर विचार करेंगे।

कहा जाता है कि एक प्रस्तुति मंच पर होती है लेकिन उससे पहले वह प्रस्तुति नाटककार के मन में भी होती है। नाटककार प्रदर्शन को ध्यान में रखकर नाट्यरचना करता है। वह अपने समय के रंगमंच को प्रभावित भी करता है तथा उससे प्रभावित भी होता है। 1980 के दशक के बाद के रंगांदोलन ने लेखकों को आकृष्ट किया। विभिन्न कथाकार, कवि आदि नाट्य रचना की और उन्मुख हुए। स्वदेश दीपक भी कहानी से नाटक की विधा में आए। उनका पहला नाटक 'नाटक बाल भगवान' उन्हीं की कहानी का नाट्यरूपांतरण है। आज प्रत्येक नाटककार चाहता है कि उनके नाटक प्रदर्शित हों। अत: वह रंगमंच को ध्यान में रखकर नाटक लिखता है। स्वदेश दीपक वैसे तो किसी थियेटर से नहीं जुड़े थे, लेकिन अपने एक इंटरव्यू में वे नाटक लिखने की प्रेरणा और रंगमंचीय ज्ञान के बारे में कहते हैं- "यह सच है कि मैंने रंगमंच कला का कोई कोर्स नहीं किया, ना ही मैं कभी अभिनेता या निर्देशक रहा हूँ, लेकिन मैं 'आदि मंच' नामक थियेटर से संबंधित रहा हूँ जिसका मैं चेयरमैन भी रह चुका हूँ। बल्कि मेरा इस ग्रुप के निर्देशक एम.आर. धीमान से घनिष्ठ संबंध है, जिन्होंने मुझे कथा से नाटक की ओर जाने की प्रेरणा दी। बाल भगवान के नाट्य रूपांतरण के दौरान, प्रत्येक दृश्य लिखने के बाद, मैं धीमान के साथ चर्चा करता था और वह प्रक्रिया मंच के दौरान बहुत ज्ञानपरक साबित हुई।"[1]

इस प्रकार एम.आर. धीमान से उन्हें रंगमंचीय व्याकरण का ज्ञान हुआ तथा अपने नाटक लिखते समय उन्होंने रंगमंच का पूरा ध्यान रखा, लेकिन कहीं भी अपने रंगमंचीय ज्ञान के बारे में वे कठोर नहीं हुए है। कहने का अभिप्राय यह है कि वे कहीं भी बहुत सारे रंगनिर्देश आदि देकर निर्देशक को बांधते नहीं है। आवश्यक निर्देश देकर भी वे नाटक में परिवर्तन करने की छूट निर्देशकों को देते हैं। निर्देशक नाटककार के सुखद रिश्ते का उदाहरण यहाँ दिखाई देता है।

मोहन राकेश जहाँ पात्रों के आने-जाने से लेकर कैसे बोलना है, कैसे नहीं, भाव, लय आदि के भी निर्देश देकर निर्देशक को पूर्णत: बांध लेते हैं, वहीं धर्मवीर भारती कहीं भी निर्देश न देकर पूर्णत: स्वतंत्रता देते हैं। 'अंधायुग' की विभिन्न अर्धछवियों वाली अनेकानेक प्रस्तुतियाँ इसका उदाहरण है।

दरअसल निर्देशक भी एक व्याख्याकार होता है, वह कृति कथ्य की पुन: रचना करने का प्रयास करता है, चाहे नाटक कितना भी नाटककार द्वारा अपने अर्थ में बंधा हुआ हो, निर्देशक उसकी अपने अनुसार व्याख्या करता है। उसकी प्रस्तुति में उसकी वह व्याख्या झलकती है। हालांकि कई बार निर्देशक कुछ और व्याख्या करता है और प्रस्तुति उसकी व्याख्या बदल देती है। यह छूट सभी निर्देशक अपनी समझ और जरूरत के अनुसार लेते रहे हैं।

बहरहाल, नाटककार रंगमंचीय निर्देशो (रंग संकेतो) के माध्यम से अपनी प्रस्तुति देता है। वह आवश्यक संकेत देकर नाटक को एक निश्चित दिशा प्रदान करने के साथ-साथ रंगमंच पर भी नाटक को ज्यादा तरोड़ने-मरोड़ने से रोकता है। स्वदेश दीपक भी आवश्यक रंगसंकेत देते हैं लेकिन निर्देशक को नया करने की छूट भी देते है। अब यह कॉपी राइट उनके बेटे (सुकांत दीपक) के पास है। उन्होंने भी अनेक निर्देशकों को नाटक के मूल अर्थ में हेर-फेर किए बिना अन्य परिवर्तनों की छूट दी है।

स्वेदश दीपक के सभी नाटकों के अनेकानेक प्रदर्शन हो चुके हैं, आज भी हो रहे हैं। जिनमें सबसे अधिक चर्चित 'कोर्ट मार्शल' रहा है। 'कोर्ट मार्शल' के अबतक (1991 से) 1000 से ज्यादा प्रदर्शन हो चुके। देश की अधिकांश भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। 1991 से आज तक का सबसे चर्चित नाटक है 'कोर्ट मार्शल'। देश ही नहीं वरन् विदेशों में भी इसके प्रदर्शन हुए हैं और हो रहे हैं। पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, यूनाइटेड किंगडम में इसके प्रदर्शन हुए है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रस्तुतियों पर विचार करेंगे।

'कोर्ट मार्शल' का प्रथम प्रदर्शन रंजीत कपूर के निर्देशन में 1 जनवरी 1991 को श्रीराम सेंटर में हुआ। साहित्य कला परिषद् के तत्वाधान में आयोजित 'प्रथम मौलिक नाटक मंचन समारोह' में प्रदर्शित यह नाटक रंजीत कपूर का मंचित पहला मौलिक नाटक था। स्वदेश दीपक रिहर्सल के साथ-साथ प्रदर्शन के दौरान भी मौजूद थे। निर्देशक-नाटककार की आपसी समझदारी को मंचीय सफलता में देखा जा

सकता है। इस प्रदर्शन की सफलता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसे समारोह में सर्वश्रेष्ठ नाटक का पुरस्कार मिला।

रंजीत कपूर ने मूल नाटक में परिवर्तन करते हुए कुछ दृश्यों को काट दिया। मूल नाटक में खिड़की में गार्ड द्वारा बातचीत को अनावश्यक समझते हुए उन्होंने बिना इस दृश्य के ही नाटक किया। एकदम सादा दृश्यबंध रखते हुए रंजीत कपूर भावों पर अधिक ध्यान देते हैं। विकास राय के रूप में गजराज राव के अभिनय के बारे में जयदेव तनेजा लिखते हैं- "सत्य की तलाश में पागल 'आत्मा के अहेरी' कैप्टन विकास राय की चुनौतीपूर्ण भूमिका में 'उठक बैठक', 'मर्सिया' और नटुआ' में विविध अभिनय रंग दिखा चुके गजराज राव ने यहाँ भी अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया।"[2]

रंजीत कपूर ने इस नाटक को करूण बनाते हुए इसके क्रूर पात्रों को भी भावुक बना दिया। 'कोर्ट मार्शल' की भूमिका में स्वदेश दीपक स्वयं लिखते हैं कि- "इस क्रुअल नाटक (थियेटर आफ क्रुअल्टी नहीं) की क्रूरता को करुण रस में बदलने का जादू शायद रंजीत कपूर ही कर सकता था। एक अत्याचारी वातावरण को मानवीय संवेगों में अनुवादित कर देने की क्षमता। यह दृश्य रंजीत का है मेरा नहीं बिल्कुल नहीं।"[3] यह कथन पाठ और प्रस्तुति की भिन्नता को सकारात्मक विकास के रूप में स्वीकार करता है।

गजराज राव (विकास राय) अपनी अद्‌भुत भाषा, लय से एक-एक करके सारे गवाहों का पर्दाफाश कर देता है। कैप्टन बी.डी. कपूर के रूप में आशुतोष उपाध्याय का अभिनय भी शानदार रहा। उसके प्रति दर्शकों के मन में घृणा ही उत्पन्न हुई। अनुशासन के बीच इतनी तल्खी से एक-एक करके चरित्रो के जो नकाब उतरे वह इस नाटक की जान थे। कहीं भी कोई अविश्वसनीयता नहीं। रामचंदर का पूरे नाटक के दौरान चुप रहना, उसके चेहरे के बदलते भावों ने स्थिति के तनाव को और गहरा कर दिया।

कुल मिलाकर सादे दृश्य बांध और अद्‌भुत व विश्वसनीय अभिनय ने इस मंचन को सफल बनाया।

'कोर्ट मार्शल' को इसके बाद अनेक निर्देशकों ने मंचित किया। दशवें दशक से आज तक लगातार सुर्खियों में रहे 'अस्मिता थियेटर' ने 'कोर्ट मार्शल' को नई ऊंचाई तक पहुंचाया। अस्मिता मूलक विमर्शों और साहित्यिक व चेतना के नए आयाम, सामाजिक समस्याओं व मानवीय मूल्यों से संबंधित

विषयों के नाटक करने वाले अरविंद गौड़ ने नए रूप में कोर्ट मार्शल को प्रस्तुत किया। खिड़की वाले दृश्य हटाकर घटनाओं के लिए 'फ्लैश बैक' तकनीक का इस्तेमाल कर, अरविंद ने 'कोर्ट मार्शल' को और गहराई दी। घटनाओं को फ्लैश बैक से कुछ कुछ सैंकेण्ड के लिए मंच पर ही प्रस्तुत किया गया जैसे कपूर का अपनी बीवी को थप्पड़ मारना, रामचंदर का रेस के दौरान बेहोश होना, रेस जीतना आदि दृश्यों को दृश्यमान कर नए रूप में प्रस्तुत किया। इन दृश्यों का प्रयोग भी इस तरह किया जैसे तेजी से कोई दृश्य दिमाग में कोंधता है। उसी तेजी से दृश्य स्टेज पर आते और चले जाते। इसके लिए उन्होंने स्वदेश दीपक से अनुमति ली थी।

मंचसज्जा एकदम साधारण रखते हुए सूरत सिंह की कुर्सी थोडा ऊपर तथा सलाहकार जज की सूरत सिंह के बाई ओर रखी थी। रामचंदर मंच के एक ओर कोने में बैठा। सूरत सिंह और जज की स्थिति में सूरत सिंह को विशेष तवज्जो देने के लिए ऐसा दृश्य बंधा रखा गया। रामचंदर एक साइड अलग से बैठा जो उनकी स्थिति को प्रदर्शित कर रहा। बाकी वकीलों और गवाहों की कुर्सी एक ओर तथा कटघरा सूरत सिंह के दाई ओर रखा गया।

वेशभूषा एक जैसी सैनिक वर्दी। सारे अभिनेता सेना से अफसरों की तरह सैल्यूट तथा मार्च कर रहे थे। एक मंचन में तो दर्शक सुसज्जित वर्दी धारी अभिनेताओं के बीच से होकर दर्शक दीर्घा तक पहुंचे। पूरा वातावरण सैनिक न्यायालय का हो गया। दर्शक इस मंच सज्जा और वेशभूषा की समरूपता से स्वयं को सचमुच में सैनिक न्यायालय में महसूस करने लगता है।

संगीत के रूप में केवल आर्मी बैंड धुन का प्रयोग दृश्य परिवर्तन के समय। और किसी विशेष ध्वनि का प्रयोग नहीं। अभिनेताओं के हाव भाव, चाल, बैठते समय टोपी को उतार देना आदि विश्वसीय वातावरण तैयार करते हैं। पर्दो का प्रयोग यहाँ नहीं किया गया। वैसे भी आजकल पर्दो का प्रयोग कम किया जा रहा है। दृश्य परिवर्तन प्रकाश-व्यवस्था से ही कराया गया है। प्रकाश वृत का अलग-अलग दृश्यों में अलग-अलग व्यक्ति पर होना निर्देशक के उद्देश्य को उभारता है। स्वदेश दीपक ने मूल पाठ में प्रकाश व्यवस्था का हवाला दिया है जो ज्यादातर समय रामचंदर पर रहता है। लेकिन अरविंद गौड के इस प्रदर्शन में प्रकाश मोनोलॉग में सूरत सिंह के चेहरे पर, कोर्ट में गवाही के दौरान पूरे दृश्य के साथ-साथ विशेष फोकस रामचंदर पर, विकास राय के वाक्यों में विकास के चेहरे पर ताकि उसकी

भाव भंगिमाएं स्पष्ट नजर आ सके। यह प्रकाश व्यवस्था त्रिभुवन की है। जिसमें दृश्य के अनुसार अलग-अलग जगह फोकस किया गया है। रामचंदर के रूदन को, बाकी मंच पर अंधेरा तथा केवल रामचंदर पर पड़ता प्रकाशवृत और अधिक गहराई से उभारता है।

अरविंद गौड अभिनय पर ज्यादा ध्यान देते है। वे भाषा की लय का विशेष ख्याल रखते हैं। आज तक उन्होंने 'कोर्ट मार्शल' के अनेक प्रदर्शन अनेक अभिनेताओं के साथ किये हैं।

सूरत सिंह के रूप में तथा विकास राय दोनों में बजरंग का अभिनय बहुत अच्छा रहा। सूरत सिंह के रूप में बजरंग शुरू में कठोर, कड़क नज़र आता है वहीं अंत तक जाते-जाते उसके चेहरे के भाव स्थितिनुसार बदल जाते हैं। विकास-राय के रूप में तो बजरंग एकदम चरित्र में एकाकार सा हो गया लगता है। स्वदेश जिन पात्रों को 'चीता' जैसा कहते हैं वहीं 'चीता' लगता है बजरंग। विकास राय के चरित्र को बजरंग नई ऊंचाई पर ले जाते हैं। हाव भाव, भाषा की लय कहीं भी शिथिल नहीं होती। कहाँ कैसे बोलना है इस सब का पूरा ध्यान रखते हैं।

विकास राय के रूप में उसके विवाद करने का तरीका, विभिन्न गवाहों से अलग-अलग लय में बात उसके चरित्र को गहराई प्रदान करते हैं। 'नक्सलाइट भाई' होने की बात पर भी विकास राय (बजरंग) कातर नहीं होता बल्कि तीखे स्वरों में बोलता है। संयमित गुस्सा तथा सयंमित मुस्कान बजरंग को विकासराय के चरित्र से एकाकार कर देती है और ज्यादा प्रभावित करती है।

निर्देशक के शब्दों में यह रंजीत कपूर के बदलते मनोभवों का नाटक है लेकिन प्रदर्शन में रंजीत कपूर से ज्यादा यह विकास राय का नाटक लगता है। आर्मी के माहौल का नाटक होने पर भी विकास राय के संवाद, उसकी लय इसे सार्वभौमिक बना देती है। स्थिति कोर्ट रूम की सीमा लांघ कर सार्वजनिक हो जाती है। रंगमंच पूरे देश में फैल जाता है और विभिन्न अस्मिताओं के लोग अपने को रामचंदर की स्थिति में पाते हैं।

नाटक का प्रारम्भ सूरत सिंह के मोनो लॉग से होता है। कुछ दृश्य काट दिए गए हैं, कुछ में थोड़ा परिवर्तन है। जैसे खिड़की वाले दृश्य काटकर, गार्ड वाले दृश्य में थोड़ा परिवर्तन है। मूल नाटक में गार्ड शुरु से रामचंदर का दोस्त लगता है। बी.डी. कपूर भी शुरु से 'अपराधी' लगता है। लेकिन प्रदर्शन में ऐसा

नहीं होता। उत्सुकता बनी रहती है धीरे-धीरे कथा प्रवाह के साथ घटना प्रवाह चलता रहता है और स्थिति की विडंबना सामने आती है, जो कि ज्यादा प्रभावित करती है।

रामचंदर का पूरे नाटक में चुप बैठना लेकिन प्रत्येक गवाही के बाद बदलते उसके मनोभाव उसकी विडंबना, उसके तनाव की अभिव्यंजना करते है। दर्शक की जुगुप्सा बढ़ती जाती है कि आखिर रामचंदर ने ऐसा क्यों किया। रूदन से लेकर अंतिम जाम तक उसके मनोभाव तनावपूर्ण रहते हैं।

गार्ड ने भी बहुत छोटा लेकिन दमदार अभिनय किया। गार्ड का तमतमाया लाल चेहरा कपूर के प्रति उसके क्रोध को प्रदर्शित करता है। वह क्रोध गार्ड का न होकर पूरे समाज का हो जाता है। दर्शकों के मनोभाव भी उससे एकाकार हो जाते हैं।

मेजर पुरी का रोल हाल ही एक प्रदर्शन में शिल्पी मारवा ने किया। मेजरपुरी के रोल में शिल्पी ने नई ऊंचाईयों को छुआ है। उनकी बहस कभी भी पूर्ववर्ती घृणा से प्रेरित न होकर तटस्थ नजर आती है। बेहतरीन ढंग से तर्कपूर्ण बहस द्वारा शिल्पी मेजरपुरी के चरित्र को नए ढंग से विकसित करती है।

कुल मिलाकर अस्मिता द्वारा प्रस्तुत 'कोर्ट मार्शल' जातिगत उत्पीड़न एवं शोषण को विकास राय की तर्कपूर्ण बहसों द्वारा सारे समाज के सामने लाने का प्रयास है। अमित कोहली द्वारा अभिनीत रामचंदर के चरित्र में कोहली का क्रंदन उसके साथ हुए संपूर्ण अन्याय को, शोषण ग्रस्त इतिहास से जोड़कर सामने ला खड़ा करता है। अस्वाभाविकता से बचते हुए जीवंत चरित्रों को खड़ा करना अरविंद गौड की विशेषता है। नाटक के अंत में ईश्वरीय न्याय (बी.डी. कपूर का आत्महत्या कर लेना) तथा रामचंदर को फांसी की सजा, सुखांत और दुखांत के इस मिश्रण को जितनी बखूबी से स्वदेश दीपक ने शब्दों में उकेरा है, उतनी ही जीवंतता तथा स्वाभाविकता से अरविद गौड ने मंच पर। हिन्दुस्तान टाइम्स में कविता नागपाल लिखती हैं- "विषय वस्तु पर कोई जोर न देते हुए, शुरुआत से जो कसाव बना है उसे धीमा किए बिना, गौड़ कोर्ट की नीरसता को तोड़ते हैं सेना की मर्यादा से मुक्त विश्वसनीय वेशभूषा, नियंत्रित कलाकार मंडली 'अमिटी' के 'कोर्ट मार्शल' को पूर्ववर्ती प्रदर्शनों से अलग करती हैं।"[4]

जिस तरह साहित्यिक रूपों में अन्वति का बहुत महत्व है वैसे ही मंच पर भी दृश्यों की अन्विति महत्वपूर्ण होती है। अरविंद गौड़ के निर्देशन में कहीं वह अन्विति टूटती नहीं है। वहीं कसाव शुरु से अंत तक बना रहता है। कविता नागपाल उसी कसाव को अपनी इस टिप्पणी में रेखांकित करती

है। न केवल भौतिक दृश्यों की बल्कि भावों की अन्विति भी बरकरार रहती है। कहीं भी कोई अस्वाभाविकता नहीं लगती। "एक भी दृश्य इधर से उधर नहीं होता और तीव्र कसाव पूरी तरह व्यवस्थित रहता है... क्रोध, कुंठा, सफलता के असंख्य भाव बहुत शानदार तरीके से प्रदर्शित हुए। वेशभूषा तथा मंच पर प्रत्येक मिनट का ब्यौरा सेना के वातावरण को अच्छी तरह पकड़ रहा था।"[5]

दृश्यबंध में रंजीत कपूर की निपुणता झलकती है। दृश्यबंध एकदम सादा होने के कारण नाटक का भाव पक्ष और अधिक उभरता है।

हालांकि कुछ बातें जैसे पिस्तौल देने की बात पर मेजर पुरी का राजी हो जाना, सूरत सिंह का 'ईश्वरीय न्याय' सहज स्वीकार कर लेना थोड़ा अटपटा तथा रहस्यमयी लगता है। फिर भी कुल मिलाकर अस्मिता की प्रस्तुति बहुत सजग निर्देशन तथा उत्कृष्ट अभिनेताओं की बेहतरीन प्रस्तुति रही है। यह कोर्ट मार्शल समाज के 'कोर्ट मार्शल' का नाटक है जिसमें बारी-बारी से विभिन्न वर्गों का चरित्र सामने आता है, जिसे सामने लाता है 'आत्मा का अहेरी' विकास रॉय।

'कोर्ट मार्शल' की एक प्रस्तुति 7 अप्रैल 2012 को लखनऊ में हुई। इसका निर्देशन किया था एस.ए. मेहदी ने। इस प्रदर्शन की खास बात यह थी कि इसमें सारे अभिनेता लखनऊ हाई कोर्ट के वकील थे। कोर्ट मार्शल वकीलों की जिरह का ही नाटक है। इसी बहस द्वारा 'सच' सामने आता है। अत: हाई कोर्ट के वकीलों द्वारा इसे अभिनीत किया जाना अपने आप में बहुत अलग रहा। यह प्रदर्शन कई दिन तक चला।

हालांकि हाईकोर्ट के वकीलों ने यह प्रस्तुति की थी लेकिन कहीं भी असल कोर्ट रूम तथा वकालत का दृश्य नहीं रखा गया। यह वास्तविक कोर्ट रूम न बनकर रंगमंच पर अभिनीत ड्रामा ही ज्यादा लगा। 'कोर्ट मार्शल' की कथा ऐसी है कि मंच सज्जा की कोई विशेष जरूरत यहाँ महसूस नहीं होती। इसलिए अधिकतर निर्देशक दृश्यबंध एकदम सादा रखते हैं। जजों और गवाहों के बैठने के स्थान में हेर-फेर करके थोड़ा बहुत परिवर्तन करते हैं। यहाँ भी दृश्य बंध एकदम साधारण रहा, कर्नल सूरत सिंह तथा अन्य जजों की कुर्सिया एक ही साथ एक ऊंचे मंच पर रखी गई जो सूरत सिंह की अतिविशेष स्थिति को घोतित न करते हुए असली कोर्ट रूम की व्यवस्था जैसी अधिक प्रतीत हो रही

थी। वकीलों की कुर्सियां भी एक और लगाई गई तथा गवाहों की एक ओर। रामचंदर को मुख्य मंच के बाएं में कटघरे के ठीक सामने बैठाया गया। पूरा दृश्यबंध असल कोर्ट रूम जैसा बनाया गया। मेजर पुरी तथा विकास राय दोनों के रूप में स्त्री अभिनेत्रियाँ थी। पहले ही दृश्य में मूछों वाले सूरत सिंह ने रोबदार छवि के बावजूद भावुक दृश्यों में बदलते भावों से चरित्र में जान डाल दी। उसकी छवि तथा भावुक दृश्यों में उसके भावों में रौद्र और शांत (करुण रस) एक साथ मिलकर अद्‌भुत दृश्य उत्पन्न करते हैं। भावों के साथ बदलता संगीत इस प्रस्तुति की अन्य विशेषता रही। जैसे-जैसे सूरत सिंह के संवाद बदल रहे थे वैसे-वैसे संगीत भी बदलता जाता है। युद्ध का वर्णन करते हुए नगाड़ों की ध्वनि, सच का सामना और अंगारा रखने की बात पर शोक संगीत की ध्वनि, उसके संवादों को दृश्यमान बना देती है। हालांकि अंतिम दृश्य में रामचंदर के रूदन के समय की शोक ध्वनि अतिरेकपूर्ण हो जाती है जिसमें रामचंदर का रूदन कम सुनाई देता है, ध्वनि ज्यादा।

विकास राय के रूप में स्त्री अभिनेत्री ने इस चरित्र को अलग अर्थ प्रदान किया। स्त्री के रूप में मिस रॉय की भावुकता ने अलग दिशा में इस चरित्र को मोड़ दिया। मूल नाटक में विकास राय कटु, तीक्ष्ण, चालाक, तटस्थ ज्यादा लगता है। यहाँ मिस रॉय के रूप में उसका चरित्र भावुक अधिक लगता है। नक्सलाइट भाई होने की बात को मिस रॉय बहुत भावुक तरीके से कहती है जबकि मूल नाटक में तटस्थता अधिक है। वहीं कपूर की पत्नी के घायल होने का वर्णन करते समय, स्वयं एक स्त्री होने के कारण मिस रॉय का वर्णन संपूर्ण स्त्री जाति के साथ-साथ स्वयं का वर्णन हो जाता है। कपूर की पत्नी के दर्द का ब्यान मिस राय के अपने दर्द जैसा प्रतीत होने लगता है। मिस रॉय का इसके बाद कोने में जाकर आंसू पोंछना भी उनकी भावुकता को घोतित करता है। कपूर के साथ बातचीत में भी मिस रॉय का पक्ष तथा संवाद दूसरी ओर मुड़ जाते है। कपूर विकास रॉय को घर पर पार्टी करने तथा 'कुछ और फन' के लिए आमंत्रित करता है। यहाँ कपूर का लेडी रॉय को आमंत्रित करना 'स्त्री' को आमंत्रित करने जैसा लगता है। ऊपर से कपूर की भाव भंगिमा में भी थोड़ा वहशीपन सा नजर आता है। पूरा दृश्य ऐसा लगता है जैसे कैप्टन कपूर मिस रॉय को घर ले जाने में बुरी नीयत रखता हो। विकास रॉय की जगह लेड़ी विकास रॉय का चरित्र नाटक के कुछ दृश्यों को अलग दिशा में मोड़ देता है। मिस रॉय भी ज्यादा भावुक नजर आती है। तीक्ष्ण और चालाक कम। उनकी बहस में भावुकता का स्थान ज्यादा है, व्यंग्य का कम।

बल्कि मेजर पुरी के रोल में स्त्री मेजर पुरी का अभिनय ज्यादा प्रभावशाली बना। उनकी जिरह,

उनके भाव बातचीत का लहजा तथा उसके साथ-साथ अंगों का संचालन आदि बेहद स्वाभाविक व जीवंत बना रहा।

सूरत सिंह के रूप में भी अभिनेता के हाव-भाव, अंत आते-आते उसकी मनोदशा बदली हुई प्रतीत होती है जो नाटक में जीवंतता लाती है।

गवाहों में सूबेदार बलवान सिंह का संयमित व्यवहार तथा संवाद प्रभावशाली रहे। डा. गुप्ता तथा रावत के भाव पूरे नाटक में एक जैसे होने के कारण नीरस लगते हैं। उनके संवादो की लय भी सर्वत्र एक जैसी है। इस मंचन में सबसे ज्यादा निराश किया रामचंद्र ने। उसका अभिनय बेहद कमजोर रहा। उसके संवाद अत्यंत भावुकता पूर्ण थे। उसके आंसुओं का प्रदर्शन उसके दु:ख को धो डाल रहे थे और उसकी संघर्षशील प्रकृति ओझल हो जा रही थी। वह अपने कृत्य के प्रति कहीं भी सशक्त न होकर याचनापरक ज्यादा लगता है। बी.डी. कपूर भी अस्वाभाविक लगता है। उसका बात-बात पर चिल्लाकर बोलना, बेवजह गुस्सा प्रकट करना नकली लगता है। गार्ड भी यहां सशक्त अभिनय नहीं कर पाया या गार्ड की यहाँ विशेष भूमिका रेखांकित नहीं होती।

प्रशिक्षित कलाकार न होने की वजह से अभिनेता संवाद भूल रहे थे। कई जगह मिस रॉय फाइल से संवादों को देखकर पढ़ रही थी। वेशभूषा में कहीं कोई विशेष उल्लेखनीय प्रयोग नहीं। कुल मिलाकर यह प्रदर्शन 'कोर्ट मार्शल' ने तनाव को रेखांकित न करके भावुकता प्रधान ज्यादा हो गया। कर्नल सूरत सिंह, विकास रॉय, रामचंदर सभी भावुक हो जाते हैं। यह रामचंद्र की स्थिति पर क्षोभ प्रकट करने-सोचने की बजाय गलदश्रु सहानुभूति जागृत करता है।

'कोर्ट मार्शल' की एक प्रस्तुति आई.आई.एम. (IIM) कलकत्ता के विधार्थियों द्वारा स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर 15 अगस्त 2010 को ड्रामाटिक सैल (Dramatic Cell) द्वारा की गई।

दृश्य बंध के रूप में एक ही ऊंचे मंच पर सलाहकार जज और सूरत सिंह का स्थान। मंच पर एक और विकास राय की कुर्सी, दूसरी ओर मेजर पुरी की। रामचंदर विकास रॉय के पास बैठा। मेजर पुरी की कुर्सी के साइड में अन्य गवाहों की कुर्सी। रामचंद्र का विकास रॉय के पास बैठना उन दोनों के एक पक्ष की ओर होने का संकेत देते हैं। इसी ओर कटघरा भी रखा है। कटघरे तथा जजों की ओर माइक का प्रबंध।

इस प्रस्तुति का दृश्यबंध अपेक्षाकृत सादा ही रहा। जिससे किसी विशेष अर्थ का बोध नहीं होता।

पहला ही दृश्य कोर्ट रूम कार्यवाही से शुरु होता है। यहाँ सूरत सिंह का मोनोलॉग काट दिया गया। जिससे इस पूरे नाटक में सूरत सिंह की स्थिति बहुत विशेष नहीं लगती।

मेजर पुरी शब्दों को शुरुआत में बहुत खींच खींच कर बोलते हैं लेकिन जैसे-जैसे नाटक आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे मेजर पुरी का अभिनय निखरता है। बाद के दृश्यों में उसके संवाद, लय एकदम स्वाभाविक तथा जीवंत लगती है। इस प्रदर्शन में सूबेदार बलवान सिंह का अभिनय प्रभावशाली रहा। उसका बयान देना, बयान देते समय घटनाओं के अनुसार बदलते हाव-भाव बहुत प्रभावित करते हैं।

अन्य गवाह जैसे कैप्टन गुप्ता तथा ब्रजेन्द्र रावत ने औसत अभिनय किया। कहीं कोई विशेष नहीं।

इस प्रदर्शन में विकास रॉय दार्शनिक ज्यादा लगता है। उसका चेहरा हमेशा एक ही भाव भंगिमा में काफी गंभीर नजर आता है। हाथों का बार-बार इस्तेमाल करके वह अपने तर्क देने की, अपनी बात रखने की कोशिश करता है। यहाँ विकास रॉय नामक 'चीता' गंभीर है, अपने लक्ष्य की तरफ सजग भी है, लेकिन फुर्तीला नहीं है। वह गंभीर दार्शनिक की भांति केवल संवाद बोलता है। तीक्ष्णता, चालाकपन कहीं उसमें नज़र नहीं आता। यहाँ तक कि चाल ढाल में भी फुर्ती नहीं दिखती।

इस प्रदर्शन में रामचंदर का अभिनय भी बहुत प्रभावशाली नहीं रहा। प्रत्येक गवाह के बयान पर उसके अंतर्मन की कशमकश, उसका तनाव, कहीं उसके चेहरे पर नज़र नहीं आ रहा। यहाँ तक कि शुरुआत में सूरत सिंह द्वारा अपनी सफाई में 'कुछ कहने पर' उसका दो बार 'सर-सर' बोलना भी भावहीन लगता है। यहाँ 'सर-सर' दो बार बोलना कुछ ना कह पाने और कह देने के बीच में झूलते रामचंदर के तनाव को प्रदर्शित करता है। लेकिन प्रदर्शन में वह तनाव नज़र नहीं आता। अंत में रूदन के बाद पानी लेकर वह कैप्टन विकास रॉय की जगह पर बैठ जाता है जो कि हास्यास्पद लगता है।

कैप्टन बी.डी. कपूर यहाँ बहुत आक्रामक और हिंसात्मक नज़र आता है। वह कहीं भी लाचार, तनाव पूर्ण नज़र नहीं आता। अपना 'भेद' खुल जाने पर भी उसका घमण्ड बरकरार रहता है। यह ऐसा 'कपूर' बन जाता है जिसके लिए उसका भेद खुल जाना भी शर्म या तनाव की बात नहीं है। अब भी वह उतना ही अपने अहं में चूर है। कैप्टन विकास रॉय के द्वारा उसकी पत्नी पर टिप्पणी करने पर वह स्वयं पिस्तौल निकालता है तथा हमला करने की कोशिश करता है। जबकि मूल नाटक में कैप्टन कपूर

गार्ड से पिस्तौल छीनता है तथा तब विकास पर तानता है। यह दृश्य यहाँ परिवर्तित रूप में है। इसलिए बाद में विकास रॉय द्वारा कपूर को पिस्तौल जारी करने की बात सही नहीं लगती।

अंत में कैप्टन कपूर की आत्महत्या की बात सुनकर तथा गोली चलने की आवाज पर पार्टी में खड़े सभी लोग ऐसे ही खड़े रहते हैं। कोई भी भाव भंगिमा नहीं बदलती। यह दृश्य बहुत अस्वाभाविक लगता है। आराम से आत्महत्या को ईश्वरीय न्याय कहकर सूरत सिंह और रामचंद्र जाम पी लेते हैं।

इस प्रदर्शन में कहीं भी किसी विशेष ध्वनि का प्रयोग नहीं किया गया। केवल दृश्य परिवर्तन के समय आर्मी बैंड धुन का प्रयोग है। जहाँ तक प्रकाश-व्यवस्था की बात है, इस प्रदर्शन की वीडियो रिकार्डिंग होने के कारण प्रकाश व्यवस्था की विशेष स्थिति से परिचय नहीं हो पाता। पूरे समय पूर्ण रोशनी है। कहीं भी प्रकाशवृत किस ओर गया उसका अंदाजा नहीं लग पाता।

कुल मिलाकर प्रशिक्षित अभिनेता न होने के कारण भी विद्यार्थियों का अभिनय सराहनीय रहा। गंभीर स्थिति का प्रदर्शन कर पूरा नाटक अजीब सी गंभीरता में चलता रहा। बहुत गहराई से एक-एक बात की जांच पड़ताल करता हुआ यह प्रदर्शन अतिरिक्त गंभीरता के कारण औसत बना रहा बहुत प्रभावशाली नहीं बन पाया।

'कोर्ट मार्शल' का अनुवाद अधिकांश भारतीय भाषाओं में हुआ है। असमी में इसका अनुवाद नयन प्रसाद ने किया जिसे डा. भागीरथी ने निर्देशित किया। कन्नड़, बंगाली, पंजाबी, मलयालम आदि भाषाओं में भी इसका अनुवाद हुआ। मलयालम में इस पर एक फिल्म भी बनी है जिसका नाम 'मालविलासम्' (Mailvilasam) है जिसका अर्थ होता है पता (address) इसी नाम से नाटक को निर्देशित किया सूर्य कृष्णमूर्ति ने।

इस प्रस्तुति में कोर्ट मार्शल को 'नए नाम' तथा नए रूप में प्रस्तुत किया गया। इस नाम में 'पता' ज्यादा महत्वपूर्ण है। आपका संपूर्ण चरित्र इस 'पते' में अंतर्निहित है।

पहले ही दृश्य में दो सैनिक कोर्ट रूप में व्यवस्था करते नजर आते हैं। सूरत सिह का मोनोलॉग यहाँ भी नहीं है लेकिन अंत तक जाते-जाते उसका चरित्र प्रभावशाली जाता है। सूरत सिंह शुरु में अपने भावों, संवादो द्वारा कठोर नियमो का पक्का सिपाही लगता है, हालांकि अंत तक भी वह इन नियमों का पालन करता है लेकिन अंत तक जाते-जाते उसकी भावनाएं बदली हुई नजर आती हैं। भले ही वह

कानून का पालन करते हुए रामचंदर को फांसी की सजा देता है लेकिन उच्चाधिकारी होते हुए भी रामचंद्र को 'दिल से सैल्यूट' करके मानवीयता का परिचय देने के साथ-साथ कानून को तोड़ता भी है।

इसमें एक नए चरित्र 'अमो' को भी निर्देशक लाता है जो मूल नाटक में नहीं है। 'अमो' रामचंद्र की गोद ली हुई वह बेटी है जिसे उसने कश्मीरी पंडितों के घर से बचाया था। कैप्टन कपूर के चरित्र को उभारने के लिए एक नई कथा जोड़ी गई है कि एक बार कुछ कश्मीरी पंडितों ने जान पर खेल कर कैप्टन कपूर को बचाया था। कैप्टन कपूर उनके घर कभी वापिस भी नहीं जाता कि उनका क्या हुआ। रामचंद्र भी उसी बटालियन में था, वह वापिस वहां जाता है। पूरा परिवार मर जाता है। एक छोटी सी बच्ची बचती है जिसे रामचंद्र अपने घर ले आता है तथा बेटी की तरह पालता है और कभी शादी नहीं करता।

इस कथा से नाटक नई दिशा में मुड़ जाता है। यहां रामचंद्र का तनाव केवल अपने लिए नहीं है बल्कि अपनी बेटी के लिए भी है। सूरत सिंह अंत में अमों का ख्याल रखने का वादा करके रामचंद्र को इस तनाव से बरी करने की कोशिश करता है। अंत का पार्टी वाला दृश्य भी यहां नहीं है।

मलयालम का यह नाटक 'कोर्ट मार्शल' से कई मामलों में भिन्न तथा ज्यादा विडंबनात्मक बन जाता है। मूल नाटक में सूरत सिंह का प्रमोशन होता है। कैप्टन कपूर आत्महत्या कर लेता है तथा रामचंदर को सम्मानीय मृत्युदंड प्राप्त होता है। लेकिन मलयालम के 'मेलविलासम्' में कपूर जैसे भावहीन, निष्ठुर, शोषक व्यक्ति का प्रमोशन होता है और रामचंदर जैसे करूण, निष्ठावान व्यक्ति को फांसी की सजा।

सभी अभिनेताओं का अभिनय बहुत शानदार रहा। कहीं कोई भी त्रुटि नज़र नहीं आती। कटघरे के पास बैठे रामचदर का हर गवाही के बाद बदलता भाव, उसके तनाव को और गहरा बना देता है।

शुरु में अमो का रोते हुए स्टेज पर आना तथा अंत में फिर से रोते हुए रामचंदर के गले मिलना बहुत मार्मिक दृश्य बन जाते हैं।

नाटक में सैन्य विभाग में कानूनों-नियमों का क्या महत्व है? इस बात का पता दृश्यबंध तथा अभिनेताओं के हाव-भाव सभी से परिलक्षित होता है। शुरुआत में सैनिकों का सभी कुर्सियों पर आर्मी के

झण्डे का कवर लगाना, एक ओर आर्मी का झण्डा तथा एक और भारत का झण्डा लगा होना, इस बात को सूचित करते है कि पूरा नाटक या पूरी स्थिति कड़े नियम कानूनों से बंधी है। गवाहों का एक साथ एक ही तरफ पैर करके बैठना, सूरत सिंह के आते ही सबका एक साथ सैल्यूट आदि उन्हें इंसानी चरित्र न बनाकर कठपुतली बना देते हैं। नियमों, कानूनों, कायदों में बंधी हुई कठपुतली। इन्हीं कठपुतलियों के असल रूप को सामने लाता है विकास रॉय।

मलयालम में होने के कारण कैप्टन कपूर का हिंदी भाषी होना, उसका फिर भी अंग्रेजी में बोलना, विकास रॉय का हिंदी ज्ञान आदि यहाँ अटपटा लगता है।

मूल नाटक में खिड़की में बोलते सैनिकों की टीका टिप्पणी को यहाँ बिना खिड़की के सैनिकों द्वारा बुलाया गया है। बाकी दृश्य वैसे ही हैं।

रामचंदर का अभिनय बहुत ही प्रभावशाली रहा। एकदम उठकर उसका सैल्यूट करना तथा फिर झुककर धीरे से बैठना उसके पशोपेश को दर्शाते हैं। अपनी बेटी के भविष्य से लेकर, अपनी सच्चाई सामने आने की बेइज्जती आदि से जो तनाव उसके अंतर्मन में है वहीं उसके भावों तथा हाव-भाव में दिखता है।

विकास रॉय बहुत आत्मविश्वासी लगता है, वह कहीं भी भावुक नज़र नहीं आता है। लेकिन एक दृश्य में जहाँ वह रामचंद्र को 'मैने बिना पासवर्ड पूछे गोली चला दी थी' वाली बात कहने के लिए इशारा करता है, वहाँ विकास रॉय का अंगूठा ऊपर करके All the best वाली स्थिति में आंख मारकर इशारा करना बडा हास्यापद लगता है। सकारात्मक संकेत के लिए प्रयोग किये जाने वाले भावों तथा इशारों को यहाँ प्रकट करना बहुत अटपटा तथा हास्यास्पद हो जाता है।

पूरे प्रदर्शन के दौरान टिक-टिक कर बजता टाइपराइटर जिंदगी की टिक-टिक या समय को सूचित करता है। बयान तथा तर्क दर्ज के लिए एक टाइपराइटर पूरी कार्यवाही को दर्ज करता है। इस प्रदर्शन में यह टिक-टिक केवल कार्यवाही दर्ज न करके रामचंदर की जिंदगी को भी दर्ज करता नजर आता है। टाइपराइटर की टिक-टिक खत्म होते ही रामचंदर भी समाप्त प्राय हो जाता है।

प्रत्येक गवाह का गवाही से पहले शपथ लेना, टाइपराइटर का टाइप करना, शुरु में सभी के हस्ताक्षर लेना आदि यथार्थवादी ढंग से असल कोर्ट की कार्यवाही जैसे प्रतीत होते है।

स्थिति के तनाव को हर दृश्य में दिखाया जाता है। कैप्टन कपूर की पहली गवाही पर विकास रॉय कुछ नहीं पूछता और केवल उसके चारो तरफ घूमकर, जाने को कहता है तो उस स्थिति का तनाव कपूर के चेहरे पर भी लक्षित होता है। कैप्टन कपूर का 'गांधी जी' को न पसंद करना क्योंकि उन्होंने हरिजनों का पक्ष लिया। दरअसल कैप्टन कपूर तथा रामचंदर के चरित्र को उभारने के लिए नई कथाओं का सृजन इस प्रस्तुति में किया गया है।

यह नाटक सूर्या कृष्णमूर्ति का नाटक अधिक लगता है स्वदेश दीपक का कम। हालांकि इन परिवर्तनों के लिए उन्होंने सुकांत दीपक से इजाजत ले ली थी। फिर भी यह नाटक इतना परिवर्तित हो जाता है कि मूल नाटक की छवि भर इसमें रह जाती है।

कन्नड़ में इसे डॉ. सिदूलिया (Siddaliuya) द्वारा अनूदित किया गया है जिसे सी.आर. सिन्हां ने निर्देशित किया।

लगभग सभी निर्देशकों ने मूल नाटक में हेर-फेर करके इसे प्रस्तुत किया है लेकिन उमेश आदित्य ने 1998 में लकड़ी के तख्तों से दीवार बनाकर उसमें खिड़की वाला दृश्य मंचित किया जैसा कि मूल नाटक में उल्लेखित है। अति यथार्थवादी होते हुए एन.सी.सी. की असली राइफलों तथा स्टेनगन के साथ अभिनेताओं ने प्रवेश किया। हालांकि यह प्रदर्शन बहुत प्रभावशाली नहीं बन पाया लेकिन मूल नाटक को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने की दिशा में यह एक सराहनीय कदम कहा जाएगा।

कोर्ट मार्शल के प्रदर्शन देश में ही नहीं वरन् विदेशों में भी हुए हैं नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि पड़ोसी देशों के साथ-साथ लंदन में भी इसका प्रदर्शन हुआ है।

करांची में इसका प्रदर्शन NAPA (National Adcademy of Performing Arts) से स्नातक सुनील शंकर के निर्देशन में 9 अक्टूबर 2013 को हुआ। भारत का एक नाटक, वह भी भारतीय सेना के विषय पर पाकिस्तान में होना अपने आप में बड़ी बात है। 'कोर्ट मार्शल' कराची में बहुत हिट हुआ। जैसा कि 'इकोनामिक्स टाइम्स' ने लिखा- "उपमहाद्वीपीय समाज वर्ग व जाति की दरार को चिन्हित करता, अनिश्चय पूर्ण 'कोर्ट रूम' का नाटक हिंसाग्रस्त कराची में बहुत हिट हुआ।'[6]

दृश्यबंध में नयापन लाते हुए सुनील शंकर कटघरे को मंच के बीचों बीच रखते हैं जहाँ से बारी-बारी सारी स्थितियों का, घटना का उजागर होता है। यह कटघरा समाज का केन्द्र बन जाता है जहाँ से समाज की सच्चाई सही रूप में सामने आती है।

वेशभूषा आदि किसी भी देश की न होकर इस नाटक को देशकाल की सीमा से परे बना देती है। लेकिन रफाय महमूद (Rafay Mahmood) 'दि एक्सप्रैस ट्रिब्यून' में उच्च अफसरों की वेशभूषा को भारतीय बताकर इसे भारतीय सीमा में रखने का आग्रह करते नजर आते हैं- "यद्यपि एक सजग दर्शक को ऊचे अधिकारियों की जैकेट, जो कि भारतीय अधिकारियों मेल खाती है और वेशभूषा से सैन्य क्रूरता का आभास नहीं होता है।"[7]

आगे वे इस जाति व्यवस्था तथा श्रेणीबद्धता को केवल भारतीय सेना तक सीमित करते नज़र आते हैं- "रोचक बात यह है कि नाटक भारतीय सेना के श्रेणीबद्ध ढांचे को उजागर करता हुआ असमानताओं पर कटाक्ष करता है।"[8]

हालांकि ना तो नाटक का थीम (theme) और ना ही सुनील शंकर का प्रदर्शन इसे भारतीय सीमा तक सीमित करता है। यह नाटक किसी भी देश की सीमा से परे सामाजिक नाटक है जो समाज-व्यवस्था में जाति व्यवस्था तथा श्रेणीबद्धता की कहानी कहता है।

बहरहाल, सुनील शंकर का यह प्रदर्शन कराची जैसी जगह पर बहुत हिट रहा। करांची में दर्शकों की प्रतिक्रिया बहुत शानदार रही। जबकि वहाँ कोर्ट रूम नाटक करना इतना आसान नहीं है। वहाँ के प्रतिष्ठित अखबार 'दि डॉन' के अनुसार "सुनील शंकर यह अच्छी तरह जानते होंगे कि 'कोर्ट रूम' का नाटक करना इतना आसान नहीं है, वह भी पाकिस्तानी दर्शकों के सामने। फिर भी उन्होंने खतरा (risk) लिया।"[9]

पाकिस्तान में कोर्ट मार्शल बहुत हिट रहा। सुनील शंकर का निर्देशन तथा सभी अभिनेताओं का अभिनय बेहद शानदार था। सुनील शंकर पूरे स्टेज का इस्तेमाल करने के लिए जाने जाते हैं। प्रदर्शन में भी उन्होंने पूरे स्टेज का प्रयोग करते हुए नाटक को कोर्ट रूम से बाहर दर्शकों को संवेदना के साथ पिरोकर एक कर दिया।

मेजर पुरी, विकासरॉय, डॉ. गुप्ता का अभिनय सबसे विश्वसनीय रहा। कराची में हुए इस प्रदर्शन में अखबारों तथा नाटकालोचकों ने भारतीय सेना में मौजूद वर्गभेद, श्रेणीबद्धता, जाति व्यवस्था को ही ज्यादा रेखांकित किया है। इस जाति व्यवस्था तथा शोषणकारी दृष्टिकोण को वे पूरे समाज में देखने के बजाए केवल भारतीय सेना में ही देखते हैं। सुनील शंकर के निर्देशन को सबने सराहा है। निर्देशन की कमियों के बारे में 'दि डॉन' लिखता है- "निर्देशन में, अभिनय को लेकर बहुत कम गलतियां हुई,

फायद खान जिन्होंने कैप्टन कपूर का अभिनय किया, किसी कारण से बहुत खरे हरियाणवी लहजे में बोल रहा था जबकि कपूर पंजाबी भाषी हैं।"[10]

जिस कपूर की भाषा 'डि डॉन' को हरियाणवी लय वाली लगती है वहीं 'दि एक्सप्रैस ट्रिब्यून' को यह 'नागौरी' राजस्थानी और भारतीय अंग्रेजी लय के बीच की की लगती है। "कपूर के रूप में फायद खान ज्यादा विश्वसनीय नजर आया जो बात आपको आश्चर्य चकित कर देगी वह है उसका नागौरी और भारतीय अंग्रेजी लहजे के बीच संतुलन करते हुए सुविधाजनक रूप से उसे बोलना।"[11]

बहरहाल, सबका अपना अलग-अलग नजरिया है। भारत में जहाँ स्वदेश दीपक के नाटक को बहुत प्रभावशाली व दमदार बताया जाता है वहीं कराची के अखबारों में इस स्क्रिप्ट को बेहद सामान्य बताते हुए निर्देशन की तारीफ की गई है। 'दि एक्सप्रैस ट्रिब्यून' के अनुसार- "लगातार एक के बाद एक नाटकीय आरोह की बौछार करके शंकर ने दर्शकों को बांधे रखा, जबकि स्वदेश दीपक की स्क्रिप्ट (Script) में इतना कुछ कहने को नहीं था।"[12]

'दि एक्सप्रैस ट्रिब्यून' ने तो कोर्ट मार्शल को रोब रिनेर (Rob Reiner) के नाटक 'A few Good Men' के जैसा बताया है हालांकि इसकी समानताओं के बारे में जिक्र नहीं किया है।

जैन अहमद (Jain Ahmed) (Artistic Director at NAPA) 'दि इकोनॉमिक्स टाइम्स' के साथ अपने अनुभव साझा करते हुए कहते हैं- "दर्शको की प्रतिक्रिया इतनी अच्छी इसलिए रही क्योंकि नाटक आज के समय से संबंधित था, जिसमें न्याय, प्रभुत्व व शक्ति से बंधा हुआ है।"[13]

'कोर्ट मार्शल' को पंजाबी में अनूदित करके यूनाइटेड किंगडम (U.K.) में सिनसिनाटी (Cincinatti) में अरनॉफ सेन्टर (Aroneff Centre) ओहियो (Ohio) में 15 दिसम्बर 2012 को प्रदर्शित किया गया।

ओहियो में बहुत सारे पंजाबी परिवार रहते हैं, अपने देश के सामाजिक संदर्भो से वहाँ की जनता को अवगत कराने तथा उन्हें इसके प्रति सचेत व सजग करने के लिए यह नाटक किया गया जैसा कि निर्देशक ने शुरुआती वक्तव्य में दर्शकों को कहा।

नाटक की शुरुआत तबले के संगीत के साथ, एक पात्र पर पड़ती रोशनी से होती है। यहां तबले की थाप के साथ-साथ बढ़ता रोशनी वृत सूरत सिंह की जिंदगी के एक-एक अध्याय को को खोलने

जैसा प्रतीत होता है। तबले की ध्वनि के खत्म होते ही पूरा प्रकाशवृत सूरत सिंह पर होता है। यह रिटायर्ड सूरत सिंह है जो व्हीलचेयर पर बैठा है। हाथ में एक स्टिक है और मुंह में सिगार तथा सिर पर एक प्रभावशाली टोपी भी है। रिटायर्ड सूरत सिंह का मोनोलॉग, उसकी स्थिति, वेशभूषा बहुत शानदार रहा। युद्ध के दृश्यों को याद करते हुए उत्तेजना स्वरूप उसका बार-बार स्टिक बजाना तथा फिर निढ़ाल होकर कुर्सी पर वापिस बैठ जाना, उसकी जिंदगी की यात्रा में बदलते मोड़ों को बेहतरीन ढंग से ब्यान करता है।

आर्मी धुन के साथ पहले दृश्य का आगाज होता है। इस प्रदर्शन में दृश्यबंध एकदम सादा रखा गया। सामने सूरत सिंह और सलाहकार जजों की कुर्सियों एक साथ, नीचे एक और विकास रॉय और रामचंदर, दूसरी ओर मेजर पुरी और बाकी गवाह। दीवार पर बिल्कुल सामने भारतीय झंडा तथा आर्मी का झंडा लगा। साईड की दीवार पर सेना की बैंड परेड के दो चित्र लगे हुए। पूरा दृश्यबंध कोर्ट रूम तथा आर्मी के अंदर ही नाटक को समेटने की कोशिश करता नजर आया।

अभिनय में विकास रॉय का अभिनय सबसे सराहनीय रहा। अपने तर्को को उसने बहुत आत्मविश्वास तथा दृढ़ता पूर्वक सबके सामने रखा। उसमें कहीं भी गुस्सा नजर नहीं आता बल्कि बेहद उम्दा तथा शांत स्वभाव से वह सारे गवाहों से सवाल जवाब करता है।

विकास रॉय के अलावा सूबेदार बलवान सिंह ने बेहतरीन अभिनय किया। पहली गवाही के समय उसका बेहद शांत स्वभाव तथा दूसरी गवाही के समय चिंतातुर भाव तथा तनाव उसके चेहरे पर भी नज़र आ रहा था।

सबसे ज्यादा हास्यास्पद स्थिति इस नाटक में सूरत सिंह के संवादों से उत्पन्न होती है। जो कर्नल सूरत सिंह बेहद कड़क, गुस्सैल, आक्रामक, कानूनों के प्रति कठोर, सेना के नियमों का पालन करने वाला है, वहीं सूरत सिंह इस प्रदर्शन में बेहद शांत, मजाकिया, मित्रवत नज़र आता है। सूरत सिंह का चरित्र दो अभिनेताओं ने निभाया है। रिटायर्ड सूरत सिंह का चरित्र कोई दूसरा निभाता है तथा कोर्ट रूम में पूरी कार्यवाही के दौरान कोई और अभिनेता नजर आता है।

कोर्ट रूम के सूरत सिंह का बार-बार दर्शकों को Please Keep quite कहना, विकास रॉय और

सलाहकार जज से उसकी बातचीत में कहीं नियम पालन, कड़ा अनुशासन नजर नहीं आता। उसके संवाद बोलते ही दर्शकों की हंसी इसका प्रमाण बनती है।

रामचंदर का अभिनय भी बहुत औसत रहा। एकदम ढीला ढाला सुस्त रामचंदर अपने अभिनय द्वारा एकदम लाचार, शोषित नजर आ रहा था जबकि उसकी आवाज, तथा लय थोडी आक्रामक लगती है। ऐसे में वह अपने चरित्र को बखूबी नहीं निभा पाया है।

कुल मिलाकर यह प्रस्तुति औसत रही। भाषा वाला सवाल यहाँ भी अखरता है। बी.डी. कपूर का पंजाबी बोलना फिर यह कहना कि हिन्दी नहीं आती। विकास रॉय का बंगाली होना। बी.डी. कपूर इस प्रदर्शन में गुस्सैल, दभी, अंहकारी नजर आया। अंतिम दृश्य में बेहद शांत ढंग से 'पोइटिक जस्टिस' को स्वीकार कर लेना भी बहुत विडंबनापूर्ण स्थिति को दर्शाता है।

इस प्रदर्शन में एक नई उपकथा की शामिल की गई। बी.डी. कपूर की पत्नी का रामचंदर का हिमायती होना तथा इसी कारण कपूर का अपनी पत्नी को पीटना। संवादों से इस उपकथा द्वारा इस झलकता है कि कपूर अपनी पत्नी पर शक करता था।

हालांकि इस उपकथा से मुख्य कथा पर कोई खास फर्क नहीं पड़ता। फिर भी यह उपकथा बी. डी. कपूर के तथाकथित 'खानदानी चरित्र' को और ज्यादा उभारती है। प्रकाश व्यवस्था में कोई परिवर्तन हुए बिना हमेशा रोशनी रहती है केवल दृश्य बदलते समय अंधेरा कर दिया गया है। किसी प्रकाशवृत का प्रयोग यहां नहीं है। पार्श्व ध्वनि का भी प्रयोग नहीं किया गया है। यह एक साधारण प्रदर्शन रहा जिसमें किसी पर्दे, विशेष ध्वनि योजना, प्रकाशवृत का कोई प्रयोग नहीं किया गया है।

निष्कर्षत: अपने सम्पूर्ण रूप में यह प्रदर्शन बहुत सफल नहीं कहा जा सकता।

नेपाली में अनूदित करके 'कोर्ट मार्शल' का प्रदर्शन 'अनूप बराल' ने 'एक्टर स्टूडियों के तत्वाधान में थियेटर विलेज (Theater Village) तेज भवन, लाजिमपट (lazimpat) काठमांडू में 23 नवंबर 2013 को किया।

'कोर्ट मार्शल' का नेपाली में भावानुवाद करके यह प्रदर्शन हुआ। सारी स्थितियां वही रही लेकिन पात्रों के नाम नेपाली कर दिए। बी.डी. कपूर यहाँ जी.बी. राणा को गया। 'राणा' नेपाल के प्रतिष्ठित

लोगों में आते हैं जिन्होंने बहुत साल वहाँ राज किया है। आज भी नेपाली सेना में 'राणा' उच्च पदों पर आसीन है। विकास रॉय यहाँ कैप्टन पोखरेल हो गया। पोखरेल मार्क्सवादी दृष्टिकोण के लिए जाने जाते हैं। नक्सलवादी गतिविधियों में भी इस जाति का नाम अक्सर लिया जाता है। बाकी नाम बदलने से कोई खास फर्क नहीं पड़ा है। कर्नल सूरत सिंह यहाँ कर्नल रूपक सिंह है। इंडियन आर्मी की जगह यहाँ नेपाली आर्मी है। स्थितियां सारी वहीं हैं, फिर भी नाम बदलने से यह नेपाल का नाटक बन गया है। करोड़ से अधिक दलित समुदाय वाले नेपाल में 'कोर्ट मार्शल' की स्थितियों का होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।

प्रदर्शन में नेपाल के प्रतिष्ठित एक्टर राजेश हमाल (Rajesh Hamal) ने कर्नल सूरत सिंह का किरदार निभाया। यह प्रदर्शन बहुत सफल रहा। "यह माना जा रहा है कि 'कोर्ट मार्शल' नाटक ने नेपाल में व्यवसायिक रंगमंच की बुनियाद रखी है। नाटक से हुई कमाई ने सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए हैं।"[14]

'कोर्ट मार्शल' ने वहां व्यवसायिक थियेटर की नींव रखी है। इसका प्रदर्शन इतना लोकप्रिय हुआ कि पूर्व प्रधानमंत्री बाबूराम भट्टाराय (Bhattarai) तथा सरकार के अनेक मंत्रियों ने इस प्रस्तुति को देखा और सराहा।

इस प्रदर्शन के सफल होने का एक कारण जहां बेहतरीन प्रदर्शन था वहीं दूसरा कारण दर्शकों की प्रतिक्रिया भी। इस प्रदर्शन ने जाति तथा पितृसत्तात्मक भेदभाव को बखूबी प्रदर्शित किया। सामाजिक हिंसा, जाति के प्रति नफरत, इंसान की पहचान केवल जाति के आधार पर होना जैसी अमानवीय भावनाओं को यह प्रदर्शन अच्छे से उद्‌भाषित करता है। बाद में इसके शो काठमांडू से लेकर छोटे-बड़े अनेक शहरों में हुए। अनूप बराल के निर्देशन में यह प्रदर्शन बहुत सफल रहा।

18 सितम्बर 2002 को चंडीगढ़ में राष्ट्रीय नाट्य पर्व के दूसरे दिन 'अल्के चटर्जी' (Alke Chatterjee) ने 'कोर्ट मार्शल' का प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन की खासियत 'बिकास रॉय' का चरित्र रहा। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में किस तरह श्रेणीबद्धता है, किस प्रकार सभी एक-एक करके निचली जातियों, स्त्रियों के शोषण में भूमिका अदा करते हैं, इन सबका बिकास रॉय गवाहों से सवाल जवाब करते हुए खुलासा करते है। इस दृष्टि से नाटक को अल्के चटर्जी ने प्रस्तुत किया कि पूरे समाज की शोषणकारी

व्यवस्था का परत-दर-परत पर्दाफाश होता चला जाता है। अपनी इसी बात के कारण यह प्रदर्शन बहुत चर्चित हुआ।

सुदेश शर्मा के निर्देशन में इसका एक और प्रदर्शन 9 सितम्बर 2004 को टैगोर थियेटर, चंडीगढ़ में हुआ। इस प्रस्तुति में रामचंदर का एक अलग चरित्र उभर कर सामने आया। रामचंदर का पूरे नाटक के दौरान चुप बैठना, उसके भावाभिनय और अंत में गुस्से तथा करुण मिश्रित उसका रूदन यह दर्शाता है कि यह जो खून उसने किया है यह एक दिन का काम नहीं है। इतने दिनों से पल-पल यातना सहते हुए, हजार बार अपमान का घूंट पीते हुए, तिल-तिल मानसिक मौत मरने के बाद उसने यह हत्या की है। रामचंदर के चरित्र के साथ-साथ सूरत सिंह की यह दुविधा कि वह सिविल कानूनों के तहत निर्णय करे या मानवीय कानूनों के तहत, अच्छी तरह उभर कर सामने आती है। कुल मिलाकर यह एक सफल प्रदर्शन रहा।

'कोर्ट मार्शल' के अनेकोनेक प्रदर्शन आज भी हो रहे है। 1990 से चर्चित हुआ यह नाटक आज भी प्रदर्शनकारियों तथा दर्शकों दोनों में बेहद प्रशंसनीय नाटक बनकर उभरा है।

स्वदेश दीपक के अन्य नाटकों का इतना ज्यादा प्रदर्शन नहीं हुआ है फिर भी 'काल कोठरी' तथा 'सबसे उदास कविता', 'कोर्ट मार्शल' के बाद सबसे अधिक बार प्रदर्शित हुए हैं।

'काल कोठरी' थियेटर के कलाकार की जिंदगी पर आधारित नाटक है। किस तरह आर्थिक तंगी, सामाजिक दबाव, भ्रष्टाचार युक्त व्यवस्था 'कला' को केवल अर्थ के चश्मे से देखकर कलाकार की जिन्दगी को नरक बना देते हैं, किस तरह उसे जीवनभर संघर्ष करना पड़ता है, इसी की कथा है- 'काल कोठरी'। 'रजत' नामक अभिनेता के जीवन की यह कथा उसके जीवन को कालकोठरी बना देती है जिसमें से न वह निकल पाता है, न उसमें रहकर सुख का सांस ले पाता है। 16 चरित्रों के इस नाटक में 'रजत' मुख्य भूमिका में है, अन्य सभी सह-अभिनेता है जो कथा के विकास में सहायक है। राजीव एक थियेटर अभिनेता है उसके चरित्र को अगर निकाल भी दिया जाए तो कोई खास फर्क नहीं पड़ता।

'काल कोठरी' के कई प्रदर्शन हुए है आज भी हो रहे हैं। थियेटर के कलाकारों की जिंदगी पर आधारित होने से यह नाटक निर्देशकों का पसंदीदा नाटक है। अरविंद गौड़ ने इस नाटक के लेखन में

भी स्वदेश दीपक का सहयोग किया था। अरविंद इसका वर्कशॉप प्रदर्शन करते हैं जो थियेटर से जुड़े लोगों के लिए होता है।

इसका एक प्रदर्शन श्रीवर्धन त्रिवेदी के निर्देशन में श्रीराम सेंटर में द्वितीय वर्ष के छात्रों द्वारा किया गया। 3 घंटे का यह लंबा प्रदर्शन किसी फिल्म की तरह था। जिसमें रज़त का किरदार राजकुमार यादव ने निभाया था।

मंच सज्जा भी श्रीवर्धन ने ही की थी। सीढ़ीनुमा मंच पर थियेटर के कमरे के रूप में एक अलमारी, जिसमें कुछ मुखौटे रखे हुए, एक टेबल पर कुर्सियां रखी हुई। इसी के दायीं ओर ऊपर जाकर रज़त का घर तथा बाई और नीचे ऑफिस का दृश्य बनाया गया। इस नाटक में तीन स्थान बदलते हैं, तीनों को एक ही मंच पर बिना खास परिवर्तन किए प्रदर्शित किया गया।

शास्त्रीय संगीत की पार्श्व ध्वनि के साथ नाटक का आरंभ हुआ। शुरू में सभी पात्र फ्रीज अवस्था में खड़े। एक पात्र बहुत सारे रिबन लिए हुए घूम-घूमकर उन सब के बीच से होता हुआ नृत्य कर रहा। उसका नृत्य कभी रौद्र रूप में तथा कभी करुण रूप में, थियेटर कलाकारों तथा उनसे जुड़े व्यक्तियों के जीवन को दर्शाता है। धीमी-धीमी रोशनी के साथ पहला दृश्य प्रारंभ होता है।

इस प्रदर्शन में सभी भावुक दृश्यों में अलग-अलग पार्श्व संगीत कभी-कभी अतिरेकपूर्ण लगता है। जब भी नवीन वर्मा (लेखक) मंच पर आता है तभी बांसुरी की ध्वनि बजती है तथा करुण सा यह संगीत कई दृश्यों में भर्ती का लगता है। दृश्य परिवर्तन पर शंख की ध्वनि, लाइट जाने के दृश्य पर भयानक हवा की ध्वनि नाटक को विश्वसनीय तो बनाती है लेकिन कई बार ऊब भी पैदा करती है।

बहरहाल, अभिनय की दृष्टि से रजत के रूप में राजकुमार यादव ने बेहतरीन अभिनय किया। लाचारी, गुस्सा, झल्लाहट, प्रेम, घृणा, करुणा आदि भावों को राजकुमार के चेहरे पर साफ देखा जा सकता था। संवादों के साथ-साथ उसके चेहरे के भावों ने उसके चरित्र में जान डाल दी। हालांकि अंत तक वह लाचार ही ज्यादा नज़र आता है। इंटरव्यू के दृश्य में शर्मा का गला पकड़कर उसका चिल्लाना, उसके चेहरे का एकदम लाल हो जाना, फिर निढ़ाल होकर कौल के कंधे पर गिर जाना उसकी लाचारी, मजबूरी, गुस्से को प्रदर्शित करता है।

मीना के रूप में काजल खन्ना ने पत्नी के चरित्र को बखूबी निभाया। मीना यहां झल्लाती चिल्लाती बीवी के रूप में सामने आती है, जिसका पति आर्थिक दृष्टि से घर को नहीं चला पा रहा। लेकिन वह उसके दर्द को भी समझती है। वह रजत की लाचारी को भी समझती हे। एक ही दृश्य में एक बार उसका जोर से चिल्लाना, क्रोधित होना वही दूसरे क्षण करुणा से रज़त को संभाल लेना, इन दोनों भावों को काजल खन्ना ने बेहतरीन अभिनीत किया। उसकी झल्लाहट में भी उसका मजबूर नज़र आना मीना के चरित्र को नया आयाम प्रदान करता है।

अफसरशाही वाले दृश्य को यहां व्यंग्यात्मक तरीके से प्रस्तुत किया गया। शर्मा यहां लंबे दांतों वाला हास्यास्पद सा चरित्र है, जो चालाक व्यक्ति कम, बेवकूफ ज्यादा नज़र आता है। दरअसल यहां शर्मा को ऐसा व्यक्ति बनाया गया है जिस पर 'कला की रक्षा' की जिम्मेदारी भारत सरकार ने डाली है, लेकिन आचरण व हाव-भाव से वह इस लायक नहीं है। अन्य दो अफसरों का बार-बार उसी की बात को दोहराना भी अफसरशाही की चाटुकारिता तथा चापलूसी की कहानी बयां करता है। इस दृश्य में वसुंधरा को देखकर शर्मा तथा अफसरों का दांत निपोरना, खीं खीं कर हंसना, उनके चरित्र तथा उनकी स्थिति को और अधिक व्यंग्यात्मक बना देते हैं। ऐसे में रजत का शर्मा पर चिल्लाकर, उसका गला पकड़ लेना रजत के गुस्से तथा झल्लाहट को केवल शर्मा तथा सीमित न करके, पूरी व्यवस्था के प्रति उसके आक्रोश को दर्शाता है।

इस नाटक में 'दादा' नामक एक चरित्र है, जो मूलत: मेकअप मैन है, जिसकी रजत तथा कौल बहुत इज्जत करते हैं। वह रजत को प्रोत्साहित भी करता है। लेकिन प्रदर्शन में इस चरित्र को एक आध्यात्मिक चरित्र बना दिया है। दादा सफेद दाढ़ी वाला बूढ़ा है, जिसके पास कमण्डल रखा है जो देखने में भव्य तथा प्रभावशाली लग रहा है। वह संवाद भी प्रवचन देने की तरह बोल रहा है। वह मेकअप भी नहीं करता। इस तरह यह चरित्र नाटक का चरित्र न होकर निर्देशक का चरित्र अधिक लगने लगता है जो रंगकर्मियों को आध्यात्मिक तथा मानसिक संबल प्रदान करता है।

महेंद्र का अभिनय छोटा लेकिन प्रभावशाली रहा। पंकज जोशी ने इस चरित्र में जान डाल दी। शुरूआत में रजत पर उसकी झल्लाहट फिर पीछे मुड़कर सिगरेट फेंककर उसका गुस्से को प्रदर्शित करना तथा बाद में रजत तथा उसके परिवार के प्रति स्नेह को उसने अच्छे से भावाभिव्यक्त किया।

थियेटर में रजत की सर्वश्रेष्ठता को चुनौती देते हुए भी अंत तक रजत का साथ देना, इस मानसिक उतार-चढ़ाव को पंकज जोशी ने अच्छे से अभिनीत किया।

बाकी सभी अभिनेताओं का अभिनय भी संतोषजनक रहा। थियेटर की जिंदगी के संघर्ष को केवल रज़त पर केन्द्रित न करके इस प्रदर्शन ने सभी कलाकारों को समाहित किया। यहां कलाकार का संघर्ष व्यष्टिपरक न होकर समष्ठिपरक है। रजत, महेंद्र, कौल सभी कलाकार संघर्षरत है। रज़त का अंत में मोनोलॉग भी अकेले रज़त नही बोलता बल्कि सभी कलाकार एक-एक करके थोड़ा-थोड़ा संवाद बोलते है। ऐसे में मोलोलॉग एकरस होने से भी बच जाता है तथा अधिक प्रभावशाली भी लगता है। 'काल कोठरी' अकेले रजत की न होकर सारे कलाकारों के दुख का प्रतीक बन जाती है।

तकनीकी रूप से कुछ खामियों के बावजूद यह एक बेहतरीन प्रस्तुति रही। दृश्य परिवर्तन के समय बहुत देर तक अंधेरा रहने के कारण कहीं-कहीं नाटक का रस भंग भी होता है तथा बोरियत भी होती है। कई जगह पार्श्व संगीत बेवजह ठूंसा हुआ लग रहा था। फिर भी कुल मिलाकर अभिनय तथा दृश्यबंध की दृष्टि से यह प्रदर्शन बहुत शानदार रहा।

'काल कोठरी' को हाल ही में 11 फरवरी 2014 को श्रीराम सेन्टर में अतुल सत्य कौशिक द्वारा प्रस्तुत किया गया। यह प्रस्तुति साहित्य कला परिषद् द्वारा आयोजित युवा नाट्य समारोह के अवसर पर की गई। दृश्यबंध में प्रतीकों के प्रयोग तथा संगीत के प्रयोग के लिए जाने वाले अतुल सत्य कौशिक ने यहां भी संगीत और प्रतीकों का प्रयोग किया।

नाटक की शुरूआत तबले और बांसुरी के साथ (जोकि मंच के बाई ओर बैठे थे) हुई। शुरूआत में सभी कलाकार 'उस ओर अंधेरा हो बेशक इस ओर उजाला है, खत्म कर दे तू स्वयं को, पर्दा उठने वाला है' नामक कविता पढ़ते है। मंच पर अंधेरा है। तभी धीमे-धीमे प्रकाश के साथ सलाखों के पीछे एक अभिनेता नज़र आता है, पीछे तीन काले पर्दे लगे हुए है। यहां ये सलाखें काल कोठरी का प्रतीक है। जिसमें से ना तो अभिनेता निकल पा रहा है ना ही वहां रह पा रहा है।

रज़त का चरित्र यहां ऐसे आक्रोशित व्यक्ति के चरित्र बन जाता है जो लाचार कम गुस्सैल ज्यादा नज़र आता है। शुरूआत में ही रज़त का आते ही सभी कलाकारों को कुछ कलाएं सीखाना, फिर उनका यंत्र चालित सा एक साथ सारी मुद्राएं करना इस ओर संकेत करता है कि यहां कुछ नया नहीं हो

रहा। सब कुछ मशीनों की तरह चालित है जो सदा एक जैसा रहता है। श्रीवर्धन त्रिवेदी का रजत जहां संघर्ष करते करते थका हुआ लाचार नज़र आता है वहीं इस प्रदर्शन में रजत लाचार की जगह गुस्सैल, आक्रोशित ज्यादा नज़र आता है।

मीना भी यहां रज़त के सामने बेबस नज़र आती है। उसके संवाद एक आक्रोशित पत्नी की बजाय एक बेबस लाचार प्रेमिका के अधिक लगते हैं। महेंद्र का चरित्र यहां भी प्रभावशाली बना है।

रजत को इंटरव्यू के लिए तैयार करते समय उसके सभी परिवारजनों का एक-एक करके उसे कभी शर्ट, पैन्ट, टाई, कोट आदि पहनाना इस ओर संकेतित करता है कि सभी की जिंदगी उसी से जुड़ी है। उनकी जिंदगी का आधार रज़त ही है।

इंटरव्यू वाले दृश्य में शर्मा यहां व्यंग्यात्मक प्रतीक न होकर चतुर चालाक तथा भ्रष्ट ऑफिसर है। एक अफसर का यहां हकलाकर बोलना सारी व्यवस्था की हकलाहट को प्रदर्शित करता है। ये दृश्य कला के क्षेत्र में सरकारी नीतियों तथा कामकाज की पोल खोलता है। त्रिवेदी का 'शर्मा' जहां हास्यास्पद चरित्र था वहीं अतुल सत्य कौशिक का शर्मा भ्रष्ट, चालाक ऑफिसर लगता है। रज़त के गला पकड़ने पर डर के बाद भी उसकी कुटिल मुस्कान संकेत करती है कि चाहे कुछ भी कर लो यह व्यवस्था ऐसी ही रहेगी।

दादा का चरित्र यहां मेकअप मैन का ही है। वह भी व्यवस्था पर आक्रोशित है। कौल साहब तथा अन्य अभिनेताओं का अभिनय भी औसत रहा।

अंगद के स्कूल से आने की घटना, शोभा का उसे लेने जाने आदि दृश्य यहां काट दिए गए। जिससे नाटक पर कोई खास फर्क भी नहीं पड़ा। लेखक की पत्नी का रूदन हृदयविदारक लगता है तथा करुणा उत्पन्न करता है। यह रूदन केवल अपने बच्चे के लिए न होकर, लेखक की समाज में हैसियत के लिए भी संकेतित होता है।

अंत में रजत का लंबा संवाद केवल रज़त ही बोलता है। 'उस ओर अंधेरा हो बेशक....' से ही नाटक का अंत हो जाता है। जिस काल कोठरी से नाटक शुरू हुआ, उसी में खत्म हो जाना यह दर्शाता

है कि कलाकार संघर्ष करेंगे, सब कुछ सहन करेंगे लेकिन रहेंगे इसी 'काल कोठरी' में। थियेटर के प्रति अभिनेताओं की लगन, उनकी निष्ठा को यह प्रदर्शन प्रदर्शित करता है।

दृश्यबंध की दृष्टि से रज़त के घर में फूलदान, लैंप, अच्छा बिस्तर व सोफा होना उच्च मध्यवर्गीय घर जैसा लगता है जो नाटक के थीम के लिहाज़ से थोड़ा अटपटा लगता है।

कुल मिलाकर यह प्रस्तुति औसत रही। इस प्रस्तुति में पूरा फोकस रज़त रहा। रज़त को केन्द्रीय पात्र बनाकर कलाकार के संघर्ष को दर्शाया गया।

नक्सलवादी गतिविधियों पर आधारित 'सबसे उदास कविता' नाटक के भी बहुत सारे प्रदर्शन हुए है। अपूर्वा नामक पत्रकार जोकि एक क्रांतिकारी भी है, उसके जीवन में क्या-क्या समस्याएं आती है। उसके जीवन तथा आस-पास के समाज की हालत संबंधित यह नाटक, राजनीतिक व्यवस्था, कानून व्यवस्था की पोल खोलता है।

नाटक की शुरूआत तथा अंत राजेश जोशी की कविता से हुआ है, जो उन्होंने खास इसी नाटक के लिए लिखी थी। जिसका भाव निरंतर प्रयासरत रहने का संदेश देना तथा उत्कंठ जिजिविषा बनाए रखना है।

इस नाटक का प्रथम मंचन 19 जून, 1998 को श्रीराम सेंटर दिल्ली में हुआ था। जिसका निर्देशन अरविंद गौड़ ने किया था।

पहले ही दृश्य में सभी कलाकारों का सामूहिक कविता पाठ करना तथा पूरे नाटक में कुर्सी पर अखबार पढ़ते लोग जिनकी पीठ स्टेज की तरफ है, बहुत प्रभावशाली रहा। अखबार पढ़ते ये लोग उस समाज संरचना के सूचक है, जिसमें एक ओर हर कोई स्थिति से पूरी तरह वाकिफ है, रोज अखबार में घटनाएं पढ़ रहे है लेकिन फिर भी प्रत्यक्ष रूप से उससे मुंह फेर कर बैठे है, उन्हें नजरअंदाज कर रहे हैं। सारी घटनाएं हमारे सामने हो रही है लेकिन हमने उससे पीठ फेर ली है।

एकदम सादे दृश्यबंध में सभी अभिनेताओं का अभिनय बहुत प्रभावशाली रहा।

अपूर्वा का अभिनय इस प्रदर्शन में बहुत विश्वसनीय रहा। डॉक्टर से बातचीत में उसके भाव,

अपने साथियों से बातचीत में, पुलिस से बातचीत में तथा सूर्यसेन से बातचीत में अलग भावों को वहन करते हुए संतुलित प्रदर्शन किया। हालांकि उसका क्रांतिकारी रूप से ही ज्यादा उभर कर सामने आया बजाय कि मृदु रूप से। सुकांत से बात करते हुए भी एक प्रेमिका के भावों को अभिनेत्री सही से व्यंजित नहीं कर पायी। अंत में जूड़ा खोलकर उसका क्रांतिकारी गीत गाना खत्म होते हुए भी एक नई शुरूआत का संकेत देता है।

जगमाल का अभिनय इस प्रदर्शन में बहुत प्रभावशाली रहा। जगमाल जमींदार का आदमी होते हुए भी स्वतंत्र है। सनकी दिमाग के जगमाल का अपूर्वा से बात करते हुए एकदम झुक जाना उसकी निष्ठा को व्यंजित करता है। जगमाल का जमींदार को मारते हुए अपनी मां को याद करना, गुस्से और करुणा से उसके मुंह का लाल हो जाना तथा साथ ही आंखें भर आना उसके चरित्र को विश्वसनीय बनाते है। जमींदार को मारने का दृश्य जगमाल के चरित्र को नई ऊंचाईयों तक ले जाता है।

बाकी सभी का अभिनय भी संतोषजनक रहा। एस.पी. लक्ष्मण के रूप में सुधीर प्रायान ने बहुत प्रभावित किया। अपूर्वा से बात करते समय गुस्सा होते हुए भी अपने आप को शांत रखना, कानून का पालनकर्ता होते हुए भी अंत में अपूर्वा से सहानुभूति रखना, ऐसे ही मिश्रित भावों को सुधीर प्रायान ने संतुलित तरीके से अभिनीत किया। अंत में उसके हाव-भाव से यह प्रतीत हो रहा था कि वह यह नहीं करना चाहता जो कर रहा है।

इस नाटक में एक दृश्य लड़ाई का है। पुलिस और नक्सलवादियों की इस मुठभेड़ के दृश्य को सांकेतिक ढंग से दर्शाया गया। दो पुलिसवालों का तेज-तेज बात करना, कभी लेट जाना, पीछे हटना, प्रत्यक्ष लड़ाई न होते हुए भी लड़ाई का आभास करा रहे थे। संगीत का बहुत कम इस्तेमाल किया गया है।

नाटक में बिल्कुल भी कांट-छांट न करते हुए इसे ज्यों का त्यों दर्शाया गया। पूरे समाज को प्रदर्शित करते हुए भी पूरा फोकस अपूर्वा पर रहा। अपूर्वा के साथी, उनकी स्थिति इतनी प्रभावशाली नहीं बन पाई जितनी कि अपूर्वा।

'सबसे उदास कविता' को मृत्युंजय प्रभाकर ने दो तरह से प्रदर्शित किया। एक खुले प्रागंण में तथा दूसरा श्रीराम सेंटर के बंद रंगमंच पर।

खुले प्रागंण वाला प्रदर्शन ज्यादा प्रभावशाली रहा। अभिनेताओं का दर्शकों के बीच से जाना,

दर्शकों के बिल्कुल सामने दृश्यों का इधर-उधर प्रदर्शन ऐसा आभास करा रहे थे जैसे दर्शक स्वयं नाटक का हिस्सा हो, नाटक के ही कोई पात्र हो। बंद रंगमंच में ऐसा आभास नहीं हो पाया हालांकि अभिनय की दृष्टि से बंद रंगमंच का प्रदर्शन भी उत्कृष्ट रहा।

इस प्रदर्शन की शुरूआत अभिनेताओं द्वारा सामूहिक कविता पाठ से हुई। जिसने दर्शकों को संवेदना के स्तर पर चैतन्य करने का काम किया। अपूर्वा का चरित्र यहां प्रभावशाली रहा। लेकिन यहां भी अपूर्वा का एक ही पक्ष ज्यादा नज़र आता है जिसमें वह मजबूर प्रेमिका अधिक नज़र आती है। अंत के दृश्य में सुकांत से बिछुड़ने का डर, उसके साथ रहने की इच्छा, सामने दिखता फांसी का फंदा इन सभी भावों को एक साथ संतुलित तरीके से अपूर्वा ने निभाया। अपूर्वा की आवाज थोड़ी पतली होने के कारण उसके क्रांतिकारी संवाद इतने प्रभावशाली नहीं बन पाए जितने कि सुकांत के साथ वाले मधुर संवाद।

इस प्रदर्शन में सबसे ज्यादा प्रभावशाली जमींदार का अभिनय रहा। एक ही अभिनेता ने जमींदार और जज दोनों की भूमिका निभाई। जमींदार के रूप में एक अहंकारी व्यक्ति के साथ-साथ, वह दु:खी पिता भी नज़र आया। जगमाल के गोली तानने पर उसके मुख पर डर के साथ-साथ आश्चर्य और यह तो होना ही था, जैसी निश्चिंतता के भाव का एक-एक करके आना उसके चरित्र को विश्वसनीय बनाते हैं। जज के रूप में भी उसका अभिनय प्रभावशाली रहा। उसकी आवाज, लय सब कुछ बहुत प्रभावशाली लगा।

जगमाल भी यहां सनकी नज़र आया। अपूर्वा से बात करते हुए उसका झुक जाना, उसकी निष्ठा को व्यक्त करता है।

डी.एस.पी. आहूजा का हरियाणवी टोन में बोलना, जमींदार के सामने आते ही चापलूसी करना आदि उसके चरित्र को विश्वसनीय बनाते हैं।

एस.पी. लक्ष्मण का चरित्र सबसे ज्यादा प्रोफेशनल और चालबाज का है वह अपने काम का मंझा हुआ खिलाड़ी लगता है। वह एक ऐसे बंगाली व्यक्ति का चरित्र यहां बन गया जो उसी माहौल से आया है जहां से अपूर्वा। उसका बंगाली टोन में हिंदी बोलना, बिना हिचकिचाए अपूर्वा से बात करना, अपूर्वा की फांसी पर कुछ न कर पाने की विचलन उसके चरित्र को नए आयाम तक ले जाती है।

बाकी अभिनेताओं का अभिनय भी संतोषजनक रहा। अंत में सूर्यसेन का लाल शॉल ओढ़कर

आना तथा दर्शकों का लाल क्रांति के नारे लगाने से नाटक का अंत होता है। नक्सलाइट आंदोलन का नाटक होते हुए भी यह नाटक हिंसा की अगुआई न करते हुए, क्रांतिकारी जीवन के संघर्ष, उनके मन के तनाव को ही ज्यादा अभिव्यक्त करता है। हल्की बूंदाबांदी से प्रदर्शन में थोड़ी रूकावट आई लेकिन फिर भी कुल मिलाकर यह प्रदर्शन संतोषजनक रहा। प्रकाश व्यवस्था के रूप में जहां दृश्य हो रहा था वही प्रकाशवृत पड़ रहा था। प्रकाशवृत किसी अभिनेता विशेष के चेहरे पर न होकर पूरे दृश्य पर रहा जो पूरी स्थिति पर फोकस कराने जैसा प्रतीत होता है।

'जलता हुआ रथ' जिसे स्वदेश दीपक अपना सबसे अच्छा नाटक मानते थे, टुकड़ों टुकड़ों में समाज की विकृत व्यवस्था की पोल खोलता है। इस खण्डित विकृति को संवेदना से एकीकृत किया गया है। शोषण के सूत्र और अन्याय, अपमान को एक दूसरे से जुड़ा हुआ दिखाकर सारी बुराईयों को एकत्रित कर दिया।

इस नाटक में कथानक बिखरा हुआ है, इसलिए इसके प्रदर्शन में भी बिखराव की संभावना अधिक रहती है। 9 दिसम्बर 1997 को इसका प्रथम प्रदर्शन सुरेश शर्मा के निर्देशन में श्रीराम सेंटर, दिल्ली में हुआ। बाबा का अभिनय इसमें बेहतरीन रहा। मुन्नी के मरने पर गुस्से से यह कहना कि हरामजादी, अकेली ही स्वर्ग का मजा लेगी? फिर उसी समय फूट-फूट कर रोना, उसके तनाव तथा दु:ख को प्रकट करते हैं। बिखरे दृश्यों के बावजूद "नाटक अपना प्रभाव तो छोड़ता है, अपनी अदाकारी के कारण।"[15]

यह नाटक नुक्कड़ नाटक जैसा प्रतीत होता है, जिसे सुरेश शर्मा ने बंद रंगमंच पर बहुत अच्छी तरह निर्देशित किया। कथासूत्र तथा दृश्यों में बिखराव, अत्याधिक पात्रों का होना, कभी भी बिना सूत्र के किसी भी पात्र का आना और चले जाना, अपेक्षाकृत कमजोर स्क्रिप्ट होते हुए भी प्रदर्शन औसत रहा। 'दि हिन्दू' के अनुसार "एक कमजोर स्क्रिप्ट होने के बावजूद, अभिनय वर्ग तथा सामूहिक प्रदर्शन जोकि अपने उत्कृष्ट पर रहा, SRC के खजाने में बहुत दिन बाद देखा गया।"[16] 'मुन्ना' के रूप में अरुणा सेठ्ठी ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया।

कुल मिलाकर यह प्रदर्शन औसत रहा। इस नाटक के बिखरे कथा सूत्र को प्रदर्शन भी सही तरीके से जोड़ नहीं पाया। शायद यहीं वजह है कि यह नाटक बहुत कम प्रदर्शित हुआ है।

स्वदेश का सबसे पहला नाटक 'नाटक बाल भगवान' उन्हीं की एक कहानी का स्वयं किया गया नाट्यारूपांतरण है। जिसकी पहली प्रस्तुति संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली की ओर से आयोजित उत्तर क्षेत्रीय नाट्य समारोह-88, शिमला में 22 सितंबर, 1988 को आदि मंच, अंबाला द्वारा की गई। इसका निर्देशन एम.आर. धीमान ने किया था जिन्होंने स्वदेश दीपक को नाटक लिखने में भी सहयोग किया था।

29 नवंबर 2013 को 'बाल भगवान' का निर्देशन अतुल सत्य कौशिक ने किया। एल.टी.जी. आडिटोरियम (L.T.G. Autditorium) में यह प्रस्तुति हुई।

पहले ही दृश्य में सभी धर्मों का प्रतीक लिए, एक समूह, सामूहिक रूप से धर्म की व्याख्या करता हुआ, सर्वधर्म भाव का संदेश समूह गान के माध्यम से दे रहा। बाद में एक बलशाली युवक हाथ में तलवार लिए नाटक के शुरूआत का पूर्व कथन बोलता है जो धर्म के प्रकाश में खड़े होने का बात कहता है। शुरू में ये सब दृश्य नाटक को भूमिका प्रदान करते हैं कि नाटक धर्म के बारे में है और एक धर्म नहीं बल्कि सभी धर्मों में यही सब बात है।

इस प्रदर्शन में सभी का अभिनय प्रभावशाली रहा। सिद्धड का अभिनय सबसे अच्छा रहा। सिद्धड का पागलों की तरह हरकत करना, उसकी मजबूरी, भूख के समय उसका चिल्लाना, उसके प्रति करुणा उत्पन्न करता है।

इस नाटक में मास्टर का अभिनय सबसे शानदार रहा। मास्टर जो इस नाटक की घटनाओं का मूल पात्र, मूल कारक है, उसका बिना लाग-लपेट कर बोलना बहुत प्रभावित करता है। मास्टर सब कुछ अपने स्वार्थ के लिए कर रहा लेकिन वह कहीं भी यह प्रदर्शित नहीं होने देता। हर बार 'बाल भगवान' नामक धर्म की अफीम वह सबको खिला ही देता है। वह हर बार सबको अपनी बात मानने को मजबूर कर देता है। चाहे वह सिद्धड को बाल भगवान मानना हो, चाहे बाद में उसे भूखा रखने की बात हो। सबसे महत्त्वपूर्ण है कि वह कुटिल, चालाक होते हुए भी कहीं भी यह प्रकट नहीं होने देता।

पंडित का अभिनय भी अच्छा रहा। हालांकि उसमें एक पिता बहुत कम नज़र आया। एक लालची, स्वार्थी व्यक्ति ज्यादा। रतन का शुरू में बाल भगवान का भक्त होना, फिर बाद में चुनावों के

चलते ऑपरेशन बाद में कराने की बात कहना, हर बार उसने बदलते भावों के अनुसार अपने को ढ़ाला। पंडिताइन का अभिनय औसत रहा।

कुछ दृश्य जैसे कि पंडित का आत्मविश्लेषण करना, नाचते-नाचते उसका पागल हो जाना, आदि काट दिए गए। पुजारिनों का संवाद भी काट दिया गया। जिससे नाटक पर कोई खास फर्क नहीं पड़ा लेकिन पंडित का आत्मविश्लेषण काट देने से उसके चरित्र का एक ही पक्ष उभर सका।

अंत में 'सब तरफ अंधकार होने लगा' वाली अंतरालिका जिसमें बाल भगवान की हालत तथा सूखे आदि का वर्णन है, उसे अलग तरीके से प्रदर्शित किया गया। चाबी वाली गुड़िया की तरह एक लड़की का मेज पर घूम-घूम कर डांस करना, यंत्रवत लग रहा है। यहीं से वह सारे संवाद बोलती है।

कुल मिलाकर यह प्रदर्शन औसत रहा। नाटक की गति अत्यंत धीमी होने के कारण रोचकता कम उत्पन्न हुई। प्रदर्शन का सारा जोर स्वार्थपरता, धार्मिक अंधविश्वास पर था, मानवीय मूल्यों पर कम। सभी चरित्र एकांगी रूप से स्वार्थी ही अधिक प्रतीत हो रहे थे। शहर से आए लोगों में व्यापारी के बेटे का अभिनय 'Overacting' हो गया था। बीच-बीच में करुण पार्श्व ध्वनि के उपयोग से दृश्यों में भावुकता लाने की भी कोशिश की गई। कुछ जरूरी अंतरालिकाएं काट देने से नाटक का पूरा प्रभाव विच्छिन्न होकर एकांगी हो गया था।

'बाल भगवान' का बंग्ला भाषा में अनुवाद करके निरंजन गांगुली ने भी प्रस्तुत किया। यह केवल भाषानुवाद था भावानुवाद नहीं। ना ही अभिनेताओं के वस्त्र बंगाली संस्कृति के थे, ना ही चरित्र बंगाली बन पाए थे। केवल भाषा बंगाली बोल रहे थे।

नाटक की शुरूआत दो पात्रों द्वारा हाथ मिलाकर पूर्वकथन बोलने से होती है। मंच पर धीमा प्रकाश है बाद में पुजारी हाथ में भाला लेकर 'धर्म के प्रकाश...' वाले संवाद बोलता है।

इस प्रदर्शन में क्रिकेट वाली अंतरालिका तथा पंडित के बड़े बेटे का पात्र काट दिया गया। अंत में पुजारिनों द्वारा गांव तथा बाल भगवान की दशा वाले दृश्य को भी काट दिया। इतना काटने पर भी नाटक के प्रभाव में कोई कमी नहीं आई।

इस प्रदर्शन में अभिनेताओं में पंडित, मास्टर तथ पंडिताइन का अभिनय सबसे विश्वसनीय रहा। मास्टर, मोटा सा एक अभिनेता था, जिसके चेहरे पर कहीं भी गलत करने की, स्वार्थपरता की शिकन

तक नहीं आती। अंत तक वैसा ऐसा ही बना रहता है। सारी समस्याओं, पाखंड की जड़ वह है, फिर भी वह इसे जाहिर नहीं होने देता।

पंडित कभी एक स्वार्थी व्यक्ति नज़र आता है तो कभी एक चिंतातुर पिता। अपने ऊपर उसे ग्लानि भी होती है लेकिन वह मास्टर के 'समझाने' पर फिर वैसा ही स्वार्थी हो जाता है। दिल्ली में कार व कोठी पाने की उसकी लालसा इतनी बढ़ जाती है कि वह अंत में 'सिद्धड' (अपने बेटे) को ही मार देता है। अंत में सिद्धड को मारते वक्त जोर-जोर से उसका चिल्लाना, हाफना, फिर भी कांग्रेस बोल की रट लगाना उसके चरित्र को दिखाते है कि स्वार्थ, लोभ का नशा मनुष्य को क्या बना देता है।

पंडिताइन भी सारी सुख-सुविधाएं चाहती है लेकिन अपने बेटे के मूल्य पर नहीं। वह अपने बच्चे को तकलीफ में नहीं देख सकती। यहीं अंतर्विरोधपूर्ण भाव उसके अभिनय में नज़र आते हैं।

बीच-बीच में ट्रक ड्राइवरों की जगत तथा रतन से बातचीत, सभी का शराब पीते हुए बात करना, आदि दृश्य भर्ती के लगते है। इनसे ना तो नाटक की गति बढ़ती है ना ही कथा पर कोई विशेष प्रभाव पड़ता है। बाकी अभिनेताओं का अभिनय भी ठीक रहा।

दृश्यबंध एकदम सादा रहा। वही तख़्त, दुकान का दृश्य बन गया, वही पंडित के घर का। दूसरे दिन की घटनाओं पर भी पात्रों के वस्त्र वहीं रहना थोड़ी कम विश्वसनीयता पैदा करते है। बाकी कुल मिलाकर यह प्रदर्शन सफल रहा। स्वार्थपरता तो इसमें दिखी ही, साथ ही साथ चरित्रों के सभी पक्षों का उद्‌घाटन भी हो सका। धर्म के नाम पर अंधे हुए पंडित, मास्टर, रतन का पूरा व्यक्तित्व प्रदर्शन में उभर कर सामने आया। सिद्धड में एक बालक का भोलापन दिखाई दिया वह कहीं भी अतिरेकपूर्ण नहीं हो पाया।

स्वदेश दीपक के नाटकों के प्रदर्शन आज भी हो रहे है। 'कोर्ट मार्शल' इनमें सबसे प्रमुख है। हालांकि कुछ दलित आलोचकों के अनुसार "कर्नल सूरत सिंह मानवीय स्तर पर बराबरी का दोस्त होने का अहसास कराता है। रामचंदर के चेहरे पर इस अहसास की जो आभा लक्षित होती है वह तमाम दलितों के चेहरे पर अभी नहीं दिखती।"[17]

लेकिन यह भी सच है कि इसी 'आभा' का प्रदर्शन देश-विदेश में लाखों बार हुआ है और हो रहा है। प्रदर्शन की दृष्टि से स्वदेश दीपक के नाटक सफल है। हालांकि 'जलता हुआ रथ' और 'बाल भगवान' इतने सफल प्रदर्शित नहीं हो पाए लेकिन फिर भी इनके प्रदर्शन औसत रहे हैं।

स्वदेश दीपक कभी भी अपने नाटकों को लेकर इतने रूढ़ नहीं हुए। उन्होंने अपने नाटकों में कांट-छांट की इज़ाज़त सभी निर्देशकों को दी इसलिए निर्देशक उन्हें प्रदर्शित करने में सहज भी महसूस करते हैं। उनके नाटकों में सफल प्रदर्शन इसी का परिणाम है। इन नाटकों का विषय ही ऐसा है कि ये किसी विशेष दृश्यबंध की मांग नहीं रखते। इसलिए प्राय सभी निर्देशक सादा दृश्यबंध ही रखते हैं जिससे अभिनय, संवाद ज्यादा उभरकर सामने आए। पर्दों का प्रयोग आजकल हो ही नहीं रहा। दृश्य परिवर्तन प्रकाश योजना के माध्यम से ही हो जाता है। ऐसे में स्वदेश दीपक के नाटकों में ध्वनि योजना तथा प्रकाश योजना को निर्देशक इतनी तवज्जो नहीं देते, जितनी कि अभिनय और संवाद पक्ष को। जहां तक 'कोर्ट मार्शल' की 'A few good man' से समानता की बात है, इन दोनों नाटक की स्थितियां भले ही एक जैसी है, लेकिन समस्या बदली हुई है। 'A few good man' में संघर्ष श्वेत-अश्वेत के बीच है वहीं इस थीम पर बनी फिल्म 'शौर्य' में हिन्दू-मुसलमान का मसला है और 'कोर्ट मार्शल' नाटक में सवर्ण और दलित का। यह समानता पूरे विश्व में विभिन्न तरह की 'असमानता' और संघर्ष की सूचक है।

बहरहाल, रंगमंच की दृष्टि से स्वदेश दीपक के नाटक प्रदर्शन योग्य है जो अपनी अलग थीम के कारण बहुत प्रभावशाली बन पाये हैं और एक अलग छाप छोड़ते हैं।

टिप्पणी और संदर्भ-सूची

1 Interview, 'दि ट्रिब्यून', 26 अक्टूबर, 1997

"True I didn't do any course in theatre arts, nor have I been an actor or a director; but I have been associated with a theatre group. Adi March and have been its chairman too.... In fact, it was my close association with the director of the group. M.R. Dhiman, that inspired me to shift from fiction to drama. While dramatising Bal Bhagwan, after writing each scene, I would discuss it with Dhiman and that process proved very educative at that stage."

2 नवभारत टाइम्स, 2 जनवरी, 1991

3 भूमिका, 'कोर्ट मार्शल', स्वदेश दीपक, राजकमल प्रकाशन

4 हिंदुस्तान टाइम्स, ए.टी.आर. (अस्मिता थियेटर रिव्यू), Vol.-1

"Gaur breaks the monotony of court scene, no underline the content without slackening the tight pace he sets from the opening scene.... authentic costumes a consistent apperance of military decorun, controlled ensemble playing gives amity's court martial a distinct edge over previous production."

5 'द संडे टाइम्स ऑफ इंडिया', ए.टी.आर., Vol.-1

"Not a single scene was out of place and the brisk pace maintained through out..... myriad emotion of anger, frustration, success ware splendidly rendered.... the army atmosphere was adequately captured with an emphasis on minute details coupled with an accuracy of stage and costume designing."

6 इकोनामिक्स टाइम्स, करांची, 15 अक्टूबर, 2013

"Big hit in violence hit Karachi, Depicts a suspenseful courtroom drama highlighting class and caste difference and fissures in the subcontinental society."

7 'द एक्सप्रैस ट्रिब्यून', करांची, 9 अक्टूबर, 2013

"However an observant viewer not the gestapo like feel to the uniform and that the high ranking officer's jackets bear resemblance to those of Indian Army officers."

8 वही

"Interstingly the play showcase the hierarchical structure of the Indian Army to comment on the inequalities."

9 दि डॉन, करांची, 9 अक्टूबर, 2013

"Sunil Shankar must have known that court room dramas are not easy to pull off, especially before Pakistani audience and yet he took the risk. Good on him that it paid off."

10 वही

"There was very few faulty moments in the production in terms of performance... Fawed Khan who acted well as Capt. Kapoor for some reason speak in a thick Haryanvi accent whereas the Kapoor speak Punjabi."

11 दि एक्सप्रैस ट्रिव्यून, करांची, 9 अक्टूबर, 2013

"Fawed Khan as Kapoor is way more convicing.... what really takes you by surprise is the comfort with which he switches between Nagauri (Rajasthani) and Indian English accents."

12 वही

"Shankar manage to bombard audience with are dramatic crescendo after another, even when Swadesh Deepak script doesn't have much to offer."

13 द इकोनामिक्स टाइम्स, करांची, 15 अक्टूबर 2013

"The response from the people has been good so far because the play relates to the times we are living in where getting justice is linked to power and influse."

14 X.Nepali.net/moviedrajeshhamal-debuted-in-a-theatre-in-anup-borals- court-martial

"It is believed that the play 'Court Martial' has created the foundation of the professional theatre in Nepal. The earning of the play is a record breaking amount."

15 जे.वी.जी. (J.V.G.) टाइम्स, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1997

16 'दि हिन्दू', नई दिल्ली, 19 दिसम्बर, 1997

"Inspite of a rather weak script, the cast and the ensamble presentation that stands among the best that we have seen from the SRC Repertory for a long time."

17 जे.वी.जी. टाइम्स, अंकियन, 13 दिसम्बर, 1997

उपसंहार

हिन्दी नाट्य जगत में 8वें दशक के बाद उतनी सक्रियता नहीं रह गई है जितनी इससे पहले थी। नाटक के प्रति कम होती रूचि को तोड़ने तथा नाट्य विधा को एक नया आयाम देने की कोशिश स्वदेश दीपक करते हैं।

उनके सभी नाटक समकालीन सवालों से प्रत्यक्ष जूझते हुए, आम आदमी की व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। तत्कालीन साहित्य जगत के किसी भी 'वाद' में न पड़ते हुए, वे बहुत सहज तथा सजग दृष्टि से मानवीय पक्षों को उजागर करते हैं। अस्मितामूलक विमर्शों से प्रत्यक्ष न जुड़ते हुए भी उनके सभी नाटक दलित, स्त्री, कलाकार आदि शोषित जनों की व्यथा कथा कहते हैं। यह व्यथा रोने-धोने और सहानुभूति प्रकट करने तक सीमित न होकर, समाज में संघर्ष करते हुए जीना सिखाती है। भले ही उनके पात्रों का अंत कुछ भी होता है लेकिन ताउम्र वे संघर्षशील रहकर आत्मसम्मान से जीते नज़र आते हैं।

स्वदेश दीपक व्यक्ति को 'व्यष्टि' की बजाय 'समष्टि' में देखने की कवायद करते हैं। उनके सभी पात्र चाहे रामचंदर हो या रजत, बाबा हो या सिद्धड, अपूर्वा हो या सुकांत, इनका संघर्ष अकेले व्यक्ति का संघर्ष न होकर संपूर्ण वर्ग का संघर्ष है, शोषित जनों का संघर्ष है।

यह संघर्ष राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों तथा समाज की शोषणकारी प्रवृत्तियों से है, जो आदमी को आदमी नहीं जानवर बना देती है। इसी संघर्ष के बीच पात्रों के मानसिक तथा सामाजिक अंतर्गुफन में दीपक बेजोड़ है।

शिल्प की दृष्टि से भी वे नया मार्ग प्रशस्त करते प्रतीत होते है। उनके नाटकों के शिल्प-विधान में पात्रों के जीवन के सभी पक्षों को उजागर करने की कोशिश नज़र आती है।

'कोर्ट मार्शल' में खिड़कियों से बोलते पात्र, 'बाल भगवान' की 'अंतरालिकाएं', 'जलता हुआ रथ' के संवाद तथा पूरा कार्यव्यापार, 'सबसे उदास कविता' के गीत, 'कालकोठरी' के स्वगत कथन, इसी विशेष शिल्प-पक्ष को उद्घाटित करता है जो व्यक्ति को संपूर्ण रूप में देखने की कोशिश करती है।

कार्यव्यापार तथा कार्यान्विति की दृष्टि से उनके कुछ नाटक इतने सफल नहीं हो पाए है जितना की 'कोर्ट मार्शल'। 'कोर्ट मार्शल' भी संशोधित रूप में ही रंगमंच पर अधिक सफल हुआ है। घटनाओं की क्रमबद्धता, पात्रों के संवाद आदि दृष्टियों से उनके नाटक थोड़े कमजोर नज़र आते है। लेकिन कथ्य की दृष्टि से उनके सभी नाटक बेजोड़ है।

शोषित जन के साथ खड़े स्वदेश दीपक के नाटक अपने समकालीनों में उन्हें अलग स्थान प्रदान करते है। जिस तरीके से वे अमानवीय प्रथाओं, अत्याचारों के बीच पात्रों को खड़ा करते है वह अपने आप में बहुत अलग है।

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के महत्त्वपूर्ण नाटककार बनकर उभरे स्वदेश दीपक के नाटक आज भी रंगमंच पर सफल प्रदर्शित हो रहे हैं। लंबी बीमारी के बाद उनकी चार रचनाएं प्रकाशित हुई, जिनमें से तीन नाटक है। 'नाटक विधा' के प्रति यह उनकी निष्ठा को रेखांकित करता है।

सजग नाट्य दृष्टि एवं सफल प्रदर्शनों के बावजूद उन्हें आलोचना जगत में वो जगह नहीं मिली है जिसके वे हकदार थे। स्वदेश दीपक वास्तविक जगत में ही नहीं, साहित्यिक जगत में भी मानो 'खो' गया है।

'काव्य' के बाद नाटक सबसे पुरानी विधा मानी गई है। 'काव्य' के साथ ही 'नाट्य' को भी आदिकाल से महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। आचार्य भरत का 'नाट्य शास्त्र' इसका उदाहरण है। इसी 'नाटक' विधा का प्रयोग भारतेंदु ने राजनीतिक स्तर पर सक्रियता लाने के लिए किया। आज उसी 'नाट्य विधा' की हालत सोचनीय है। एक दो पत्र-पत्रिकाओं को छोड़कर किसी भी महत्त्वपूर्ण पत्रिका में नाटक पर एक लेख तक नहीं मिलता। 'नाटक' समाज से प्रत्यक्ष जुड़ने वाली विधा है। लेकिन आज नाटककार 'नाटक' लिखकर उसी में दबकर रह जाते हैं। महंगाई की मार निर्देशकों को भी तथाकथित सफल नाटकों का प्रदर्शन करने के लिए मजबूर करती है। ऐसे में स्वदेश दीपक जैसे नाटककारों पर ध्यान दिए जाने की जरूरत है जिनका नाट्य जगत में अमूल्य एवं सराहनीय योगदान है।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ

स्वदेश दीपक- 'नाटक बाल भगवान', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012

स्वदेश दीपक- 'कोर्ट मार्शल', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1991

स्वदेश दीपक- 'जलता हुआ रथ', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1998

स्वदेश दीपक- 'सबसे उदास कविता', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1998

स्वदेश दीपक- 'काल कोठरी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1999

अन्य आलोचनात्मक ग्रंथ

आद्य रंगाचार्य- 'भारतीय रंगमंच', NBT, 1984

इंद्रनाथ मदान- 'हिंदी नाटक और रंगमंच' (पहचान और परख), लिपि प्रकाशन, 1974

कपिला वात्सायन- 'पारंपरिक भारतीय रंगमंच' (अनंत धाराएं), NBT, 1995

गिरिश रस्तोगी- 'समकालीन हिंदी नाटककार', इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, 1982

गिरीश रस्तोगी- 'बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच', ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2008

गिरीश रस्तोगी- 'रंगभाषा', NSD, राजकमल प्रकाशन, 1999

गिरीश रस्तोगी- 'नाटक तथा रंग परिकल्पना', विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1992

गोविन्द चातक- 'नाट्य भाषा', तक्षशिला प्रकाशन, 1981

गोविन्द चातक- 'नाटक की साहित्यिक संरचना', तक्षशिला प्रकाशन, 1994

गोविन्द चातक- 'आधुनिक हिंदी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना', तक्षशिला प्रकाशन, 1997

गोविन्द चातक- 'रंगमंच कला और दृष्टि', तक्षशिला प्रकाशन, 1998

जयदेव तनेजा- 'नई रंग चेतना और हिंदी नाटककार', तक्षशिला प्रकाशन, 1994

जयदेव तनेजा- 'आधुनिक भारतीय रंगलोक', ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2006

जयदेव तनेजा- 'रंगकर्म और मीडिया', तक्षशिला प्रकाशन, 2006

जयदेव तनेजा- 'आधुनिक भारतीय रंग परिदृश्य', तक्षशिला प्रकाशन, 2009

जयदेव तनेजा- 'हिंदी रंगकर्म : दशा और दिशा', तक्षशिला प्रकाशन, 2010

जयदेव तनेजा- 'हिन्दी नाटक आजकल', तक्षशिला प्रकाशन, 2010

जयदेव तनेजा (सं.)- 'नाट्य विमर्श', NSD, 2003

देवेन्द्र राज अंकुर- 'पहला रंग', राजकमल प्रकाशन, 2013

देवेन्द्र राज अंकुर- 'सातवां रंग', राजकमल प्रकाशन, 2010

देवेन्द्र राज अंकुर- 'अंतरंग बहिरंग', राजकमल प्रकाशन, 2004

देवेन्द्र राज अंकुर- 'पढ़ते देखते सुनते', राजकमल प्रकाशन, 2008

देवेन्द्र राज अंकुर- 'दर्शन प्रदर्शन', राजकमल प्रकाशन, 2013

धीरेन्द्र शुक्ल (सं.)- 'हिंदी नाटक और रंगमंच', NBT, 2003

नरनारायण राय- 'नाट्य विवेक', सन्मार्ग प्रकाशन, 1981

डॉ. नरेन्द्र मोहन (सं.)- 'समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच', वाणी प्रकाशन, 2009

डॉ. निधि गुप्ता- '10वें दशक के हिंदी नाटक : संवेदना और शिल्प', प्रशस्ति प्रकाशन, 2005

नेमिचंद्र जैन- 'आधुनिक हिंदी नाटक : सार्थकता की दिशाएं', दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, 1978

नेमिचंद्र जैन- 'रंगपरंपरा- भारतीय परंपरा में निरंतरता और बदलाव', वाणी प्रकाशन, 1996

नेमिचंद्र जैन- 'रंगदर्शन', राधाकृष्ण प्रकाशन, 1993

प्रताप सहगल- 'रंगचिंतन', नवराज प्रकाशन, 1998

महेश आनंद- 'कहानी का रंगमंच', राजकमल प्रकाशन, 1997

महेश आनंद (सं.), देवेन्द्रराज अंकुर- 'रंगमंच के सिद्धांत', NSD, 2009

रमेश गौतम- 'रंगानुभव के बहुरंग', स्वराज प्रकाशन, 2006

रमिता गुरव- 'समकालीन हिंदी रंगमंच', विद्या प्रकाशन, 2008

सत्येंद्र तनेजा- 'हिंदी नाटक : पुनर्मूल्यांकन', ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, 1991

सिद्धनाथ कुमार- 'प्रसाद के नाटक', दि मैकमिलन प्रकाशन, 1978

सिद्धनाथ कुमार- 'नाटकालोचन के सिद्धांत', वाणी प्रकाशन, 2004

डॉ. सुरेश वशिष्ठ- 'हिंदी नाटक और रंगमंच', प्रेम प्रकाशन मंदिर, 1993

अन्य नाटक

अजय शुक्ला- 'ताजमहल का टेण्डर', प्रकाशन संस्थान, 2002

धर्मवीर भारती- 'अंधा युग', किताबमहल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1959

भीष्म साहनी- 'हानूश', राजकमल प्रकाशन, 1977

भीष्म साहनी- 'कबीर खड़ा बाजार में', राजकमल प्रकाशन, 1981

भीष्म साहनी- 'माधवी', राजकमल प्रकाशन, 1984

मुद्राराक्षस- 'योर्स फेथफुली', संगम प्रिटिंग सर्विस

मुद्राराक्षस- 'संतोला', वाणी प्रकाशन, 1980

मोहन राकेश- 'आषाढ़ का एक दिन', राजपाल एंड संस, 1958

मृदुला गर्ग- 'जादू का कालीन', राजकमल प्रकाशन, 1993

रामेश्वर प्रेम- 'चारपाई और अजातघर', राधाकृष्ण प्रकाशन, 1984

सुरेन्द्र वर्मा- 'नींद क्यों रातभर नहीं आती', राधाकृष्ण प्रकाशन, 1978

सुरेन्द्र वर्मा- 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', राधाकृष्ण प्रकाशन, 1975

सुरेन्द्र वर्मा- 'आठवाँ सर्ग', राधाकृष्ण प्रकाशन, 1976

शंकर शेष- 'अरे मायावी सरोवर', पराग प्रकाशन, 1990

शरद जोशी- 'दो व्यंग्य नाटक', राजकमल प्रकाशन, 1984

पत्र-पत्रिकाएँ

नटरंग, दिल्ली, अंक-43, 80, 32, 42, 37, 45, 54, 60, 47

नटरंग, दिल्ली, मार्च-दिसंबर, 1989

रसप्रसंग, दिल्ली, अंक-3, 5, 11

पत्र

दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 11 सितंबर, 2003

दि एक्सप्रैस (The Express), नई दिल्ली, 10 सितंबर 2004

हिंदुस्तान, नई दिल्ली, 18 जून 1998, 1 जुलाई 1990, 23 जून 1996

हिंदुस्तान, पटना, 1 जुलाई 1990

दि हिंदू, दिल्ली, 2 जून 2003, 19 जून 1998, 19 दिसंबर 1997

दि हिंदू, हैदराबाद, 2 जून 2003

इंडियन एक्सप्रैस, चंडीगढ़, 10 सितंबर 2004

इंडियन एक्सप्रैस, चंडीगढ़, 20 सितंबर 2002, 19 सितंबर 2002

इंडियन एक्सप्रैस, चंडीगढ़, 6 सितंबर 2003

जे.वी.जी. टाइम्स (J.V.G. Times), दिल्ली, 10 सितंबर 1997, 13 सितंबर 1997

नवभारत टाइम्स, दिल्ली, 2 फरवरी 1991

राष्ट्रीय सहारा, दिल्ली, 1 जून 1997

सहारा समाचार, दिल्ली, 23 जून 2002

दि ट्रिब्यून (The Tribune), चंडीगढ़, 26 अक्टूबर 1997

ATR- Volume-1, Asmita Threatre Group

The Telegraph, कलकत्ता, 18 मई 2012

अंतर्राष्ट्रीय समाचार पत्र

The Dawn, Karachi, Pakistan, 9 Oct. 2013

The Express Tribune, Karachi, Pakistan, 9 Oct. 2013

Economics Times, Karachi, Pakistan, 13 Oct. 2013

Aaja Nepal, Kathmandu, Nepal, 17 Dec. 2013

Nepali Times, Kathmandu, Nepal, 28 Nov. 2013